शंभुनाथ शर्मा

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे है, जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत मे लेखन-कला का सभवतः सबसे प्रचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा : दूसरी सदी ईसवी

सौजन्य : राष्ट्रीय सग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

शंभुनाथ शर्मा

लेखक

ओम गोस्वामी

साहित्य अकादेमी

Shambhu Nath Sharma : A monograph in Hindi by Om Goswami on the modern Dogri poet. Sahitya Akademi, New Delhi (1992), Rs. 15.

प्रथम संस्करण : 1992

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए /44 एक्स.,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास 600 018

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग,
दादर, बम्बई 400 014

109, जे. सी. मार्ग, बंगलौर 560 002

मूल्य : पन्द्रह रूपये

ISBN 81-7201-244-6

लैज़र सैटिंग : वैलविश पब्लिशर्स,
पीतमपुरा, दिल्ली 110 034

प्रिंटर्स : एवन आफसैट प्रिंटर्स,
नई दिल्ली 110 002

क्रम

परिप्रेक्ष्य

डुग्गर का सांस्कृतिक भूगोल :

हिमालय की पर्वत शृखलाओं मे अवस्थित जम्मू और कागड़ा की नैसर्गिक छटा देखते ही बनती है । इस वर्णनातीत सौदर्य ने मर्मज्ञ हृदयो में सदा सौंदर्य चेतना को छलकाया है । प्रकृति ने वरद हस्त से भाव-संसार का प्रतिनिधित्व करने वाले कवियो की काव्यानुभूति को समृद्ध किया है । डोगरा-पहाड़ी कवियो ने धौला-धार, काली-धार और अन्य प्राकृतिक उपदानो का वर्णन करके वस्तुतः उस अनूठे भाव-सौदर्य का गान किया है, जिसकी छवि प्रत्येक सहृदय के मानस पर अमिट छाप छोड़ जाती है । ऐतिहासिक दृष्टि से जम्मू और कांगड़ा को शाति और सद्भावना की शरण-स्थलिया कहा जाता है । इन दोनों क्षेत्रो को दारुल-अमान की सज्ञा दी जाती रही है ।

पर्वतीय उपत्यकाओ, ढलानो, मैदानो अथवा तलहटियो मे बसे डोगरा-पहाड़ी लोग मेहनती और मुख्यता कृषि-जीवी है । परंतु यह एक तथ्य है कि पड़ोसी प्रदेश पजाब की तरह सोना उगलने वाली भूमि के स्वामी न होते हुए भी यह लोग अपनी कड़ी मेहनत और कम उपज के बावजूद सनातन सतुष्टि मे जीते आ रहे है । इतना ही नही, जीवट के धनी यह लोग अपने क्षेत्र को देव-भूमि कहने मे विशेष गौरव का अनुभव करते है । पुरातन भारतीय आस्था और संस्कृति की धारा अभी इस क्षेत्र मे अबाध बहती आ रही है ।

डोगरा-पहाड़ी लोग मुख्यता शक्ति के उपासक है । पुरा वृत कथाओ के अनुसार शिव अर्धांगिणी पार्वती चूकि हिमालय के इसी क्रोड़ मे उत्पन्न हुई थी, इसलिए इन लोगो का अपनी पुरातन मान्यताओ के प्रति श्रद्धावनत होना स्वाभाविक है । शक्ति उपासना का प्रचलन भारत के किसी प्रदेश मे उतना नही है जितना कि जम्मू

और हिमाचल में चला आ रहा है । सैकड़ो शक्ति मदिर शक्ति-पूजा और अततोगत्वा पर्वत पुत्री पार्वती की पौराणिक प्रतिष्ठा की कथा कहते नज़र आते है । जम्मू प्रात मे वैष्णो देवी, बाहवे वाली, महामाया, रिऊशिरा देवी, मनसा देवी, बाला सुंदरी, सुकराला और सरथल अष्ठादश भुजी आदि के प्रमुख शक्ति पीठों के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे देवी-मंदिर है । इस भाँति हिमाचल मे ब्रजेश्वरी, ज्वालामुखी, चिंतपुरणी, नयनादेवी, चामुंडा आदि अनेक अन्य मंदिर डोगरा जाति में मूला प्रकृति एव मातृका शक्ति की उपासना के साक्षी है । शक्ति-पूजा का मुख्य कारण यहाँ के जन-मानस में प्राचीन काल से चली आ रही यह धारणा है कि पार्वती का जन्म जम्मू के पर्वतीय राज्य 'चनैहनी' मे यहाँ के नरेश राजा हिमवान के घर हुआ था । शिव से संबद्ध मिथकों में वर्णित अनेक स्थान जम्मू के पर्वतीय क्षेत्र मे आज भी विद्यमान है ।

हरियाणा प्रदेश के शैव जंगम अपनी प्रसिद्ध शिव गाथा मे यों गाते हैं—

"जम्मू देस में नगर चंदैनी,
ता मैं रहता मैचल राजा ।"

तमाम मातृका शक्तियो की मूलाधार पार्वती को माना गया है । यही कारण है कि डोगरा-पहाड़ी लोग शक्ति के उपासक हैं ।

शक्ति उपासना का मनोवैज्ञानिक पहलू यह है कि डोगरा-पहाड़ी लोग सदियों से सैन्य व्यवसाय को अपनाते आए है । क्षीण आर्थिक दशा भी उन्हें यह व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य करती रही है । परंतु इस व्यवसाय के प्रति उनमें एक आकर्षण उस परंपरा के कारण भी है जो प्रायः डोगरा जाति के सांस्कृतिक मूल्यों मे सम्मिलित हो चुकी है । यही कारण है कि डोगरी लोकगीतों में बहुत ज्यादा सख्या ऐसे गीतों की है जिनमें बिरहनी नायिका सिपाही (सैनिक) के लौट आने की प्रतीक्षा कर रही है । इस परंपरा का सर्वज्ञात पहलू है—देश हित में मृत्यु का वरण । अतएव सामरिक मानसिकता, डोगरा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अग है । जीवन-यापन

की कठोर परिस्थितियों से दो-चार होने वाले डोगरा लोग युद्ध में जहाँ दिलेरी और वीरता की मिसाल कायम करते आए है, वही उनकी कलागत उपलब्धियां भी कम नहीं हैं । अमन की छत्रछाया में इस क्षेत्र ने पहाड़ी चित्रकला की अनुपम शैली को जन्म दिया है । बसोहली-कागड़ा की सूक्ष्म चित्रकला का उन्नयन डोगरा-पहाड़ी लोगो के कला प्रेम का साक्षी है । इस शैली के चित्र आज लंदन, बोस्टन एवं मास्को की कलादीर्घाओं मे शोभायमान होकर डोगरा-पहाडी लोगो और उनकी कला समझ की कीर्तिपताका बने भारत के यश को चार चाँद लगा रहे है ।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में जम्मू और कांगड़ा आदि क्षेत्रो का वर्णन 'वाहिक' प्रदेश के अतर्गत हुआ है । इन्हें क्रमशः त्रिगर्त और द्विगर्त कहा जाता रहा है । विद्वानो का मत है कि मूलतः दोनों प्रदेश त्रिगर्त के अतर्गत आते थे, बाद में त्रिर्गत के सादृश्य पर जम्मू के पहाड़ी प्रदेश के लिए द्विगर्त का प्रचलन हुआ । इस सज्ञा का प्रचलन भी कम पुराना नहीं है । चबा के एक ताम्रपट मे दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के घटनाक्रम मे दुगरिश्वर अथवा डुग्गर नरेश का ज़िक्र आता है । द्विगर्त से डुग्गर शब्द का विकास हुआ बताया जाता है । डुग्गर के वासी डोगरा कहलाए परंतु डुग्गर व्युत्पत्ति के विषय मे विद्वानो मे मतैक्य नही है । सूफी संत बाबा फरीद के एक वाक् में डुग्गर शब्द का उल्लेख हुआ है ।

बहरहाल, यह सुनिश्चित है कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित मद्र देश वस्तुतः जम्मू और हिमाचल क्षेत्र ही है और तौषी नदी सूर्यपुत्री तवी नदी है । डोगरा क्षेत्र की सांस्कृतिक विशिष्टता एवं डोगरा संज्ञा में समाहित होने वाले क्षेत्रो की परिगणना कविराज भोलानाथ ने यो की है—

लोका डुग्गर देशजा न चपला नानर्थवाद प्रिया : ।
ते पश्यन्ति सुहृद्दृशा निज सखीन काश्मीर देशोभ्दवान ।।
खण्डं कुल्लुप्रदेशव्यापि निखल शिमलाद्रिपर्यन्तगम् ।
सर्व डुग्गर सज्ञयास्ति प्रथित नाना नृपै शासितम् ।।

-राजतरङ्गिणी (परिशिष्टम)

अर्थात्—वाद-विवाद के प्रेमी परंतु चचल स्वभाव से रहित डुग्गर देश के लोग कश्मीर प्रदेश के प्रति सद्भावना रखते है और उनसे मित्रवत् व्यवहार करते हैं । जो प्रदेश उत्तर की ओर कुल्लू प्रदेश और पूर्व मे शिमला तक व्याप्त है, वह सारा प्रदेश डुग्गर कहलाता है और यह अनेक राजाओ द्वारा प्रशासित है ।

अंग्रेज़ो से भी पहले कुल्लू, कांगड़ा, शिमला, पठानकोट, गुरदासपुर, दीनानगर, शकरगढ़ (अब पाकिस्तान) और तहसील हमीरपुर (होशियारपुर), डफरवाल (स्यालकोट), मनावर छंभ आदि विस्तृत क्षेत्र के लोग, प्रमुख राजाओं की सेनाओ मे काम करते थे । भाषाई एवं सांस्कृतिक एकता के आधार पर अंग्रेज़ों ने इन क्षेत्रों से डोगरा रेजीमेंटे संगठित की थीं । आज भी भारतीय सेना की डोगरा टुकड़ियों मे इन क्षेत्रों के लोग इसी आधार पर भरती होते हैं ।

विस्तृत भू-क्षेत्र पर फैले डोगरा-पहाड़ी लोगों की सांस्कृतिक एकता यहाँ के जन-जीवन की रंगीन मिजाज़ी से उद्भूत है । बुवाई, जुताई, कटाई करते हुए किसान मेहनत के गीत गाते है तो सामूहिक कृषि कार्यों में लगे हुए लोग गायन एवं वादन द्वारा सामुदायिक जीवन का अनुपम दृश्य प्रस्तुत करते है । पर्वतों पर रात्रि की नीरवता को भंग करते बाँसुरियों और चंग के मादक स्वर और खामोशी के पहलू से फूटती पहाड़ी गीतों की स्वर लहरिया—पहाड़ी जन-जीवन की अभिन्न पहचान हैं । सरल हृदय पहाड़ी लोग शांति और मेहनत को ही जीवन का मूलमंत्र मानते हैं । परंतु वे आनद का कोई अवसर खाली नहीं जाने देते । यही कारण है कि प्रत्येक सामुदायिक गतिविधि को एक उत्सव का-सा महत्त्व प्राप्त है । मेलों, नृत्यों एव धार्मिक वृत्ति से संबंद्ध अनुष्ठानो मे जन-मानस की रागात्मकता के दर्शन होते है । यह सांस्कृतिक चिन्ह डोगरा-पहाड़ी लोगों की ज़िंदादिली का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं ।

सांस्कृतिक एकात्मकता :

किसी ने सत्य ही कहा है कि प्रकृति ऐसा दर्पण है जिसके द्वारा

हम ईश्वरीय सत्ता का दर्शन कर पाते है । इसी भाँति यदि कवि मन को युगीन यथार्थ का प्रतिफलक कहा जाए तो कोई अनौचित्य नहीं होगा । कवि की आवाज़ जनता की आवाज़ होती है । डोगरी-पहाड़ी कवियो ने जम्मू और कागड़ा की सांस्कृतिक एकात्मकता की पुष्टि अपनी रचनाओं में की है । लालचंद प्रार्थी ने इस बहुरंगी समाज के विषय में यों लिखा है—

कुल्लू दा दशहरा, चबे मिजरा दे मेले ओ ।
कांगड़े ते जम्मू छिं'जां घुलन गुरु चेल्ले ओ ।
चंबा, कुल्लू, कागड़ा ते जम्मू इक देश ओ ।
ऊना, देहरादून, हिमाचल परदेस ओ ।"

चंबा, कुल्लू, कांगड़ा, जम्मू एक ही सांस्कृतिक खंड है । कुल्लू का विख्यात 'दशहरा मेला' और चंबा का 'मिजरो का मेला' तमाम पहाड़ी लोगो के साझे पर्व हैं । जम्मू और कागड़ा के जन-मानस का उल्लास इन क्षेत्रो में आयोजित होने वाले दगलो मे व्यक्त होता है । इन स्थानो के अतिरिक्त ऊना, देहरादून तथा हिमाचल प्रदेश के सुदूर पहाड़ी क्षेत्रो की संस्कृति एवं भाषा में स्पष्टतया एक सांझ है ।

जम्मू के सुप्रसिद्ध कवि रघुनाथ सिह सम्याल इस विषय मे कहते हैं—

"भाव बी, भेस बी, देस बी रागड़ा,
मीरपुर, जम्मुआं, नूरपुर, कांगड़ा ।
सोहे दी ब्हार ते बसोए दा भागड़ा,
दब्बियै ढोल बजाई जायां —
डोगरा देस जगाई जायां.......।"

हमीरपुर, जम्मू, नूरपुर और कांगड़ा का क्षेत्र एक ही रंग मे रंगा हुआ है । यहाँ के लोगो का भाव और भेस दोनों एक है । भाव से कवि का तात्पर्य भाषा और इसके मीठे गीतों तथा सस्कृति से है जबकि भेस से वह वेश-भूषा तथा जातीय आचरण की एकता की बात कहता है ।

स्वतंत्रता के स्फुलिंग और स्वामी भक्ति :

डोगरा-पहाडी क्षेत्र मे शाति, सौहार्द और भाईचारे की युगीन परपरा के कारण ही यहाँ बसोहली-कागडा चित्र शैली पनप सकी । प्रशात वातावरण मे युगीन लौकिक परपराए अबाध गति से पलती-बढती रही हैं । सदियो से सामती मानसिकता का बोझा ढो रहे जनमानस मे नए जीवन मूल्यों और जीवन की बदलती सच्चाइयो को ग्रहण करने की सामर्थ्य नही रहती । अपितु, नएपन और बदलाव के प्रत्येक स्वर का विरोध किया जाने लगता है । यही कारण है कि 1947 ई. तक डोगरा राजवश की सरपस्ती तले भारतीय स्वतंत्रता के स्वर उभर नही पाए । जो होता आ रहा है, इसके प्रति अधिकाश लोग सतुष्ट नजर आते है ।

जम्मू और कांगड़ा, डोगरा-पहाड़ी संस्कृति के दो केंद्र होते हुए भी राजनीतिक आचरण की दृष्टि से दोनों की दिशाएं विपरीत है । जम्मू में जहाँ शासन एव सत्ता दोनों प्रायः केंद्रीय सत्ता के वफादार रहे है, वही कागड़ा मे कभी-कभार केद्र से स्वतंत्र होने की अभिलाषा भी प्रतिभासित होती है । जम्मू कभी काबुल और तक्षशिला के राजाओं की पहाड़ी जागीर रहा था, जिसे कठिन समय मे वे शरण के लिए इस्तेमाल करते थे । प्राचीन जम्मू में सत्ता का केंद्र 'पुरमडल' से सचालित होता था, जिसे प्रख्यात विद्वान जगदीशचद्र साठे पूरु राजाओ की राजधानी मानते हैं ।

1857 ई. के स्वतंत्रता सग्राम में जम्मू की सेनाओं ने अंग्रेज़ो की ओर से भाग लिया था । 1920 ई. मे अंग्रेज़ों की ओर से प्रथम विश्वयुद्ध मे भाग लेकर लौटने वाली डोगरा पलटन के सम्मान में आयोजित एक समारोह में महता मथरादास ने जो कविता पढ़ी उससे प्रसंगवश डोगरा शूरवीरो की 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में अता की गई निषेधात्मक भूमिका को यों सराहा गया—

"दिल्लियै दा तुसें गदर चुकाया,
पैरें एठ अगरूर रलाया,
डुग्गर दी पेच रखाई ।"

अर्थात्—1857 ई. के गदर को दबा कर तुमने बागियों के

अभिमान को मिट्टी में मिला दिया । दिल्ली मे गदर खत्म करके तुम ने डोगरा वीरता की पेंच रख ली ।

वीरता की यह पेच विदेशी आका के लिए स्वामी-भक्ति का कीर्तिमान थी । दूसरी ओर कांगड़ा के डोगरा सपूत बजीर रामसिह पठानिया ने नूरपुर से आज़ादी की ज्योति प्रज्वलित की । वे अग्रेज़ आधिपत्य को स्वतंत्रता के लिए चुनौती मानते थे । संभव है उन्हें व्यापक राष्ट्रीय हितो मे स्वतत्रता की परिभाषा ज्ञात न हो । तो भी विस्तारवादी एव उपनिवेशवादी अग्रेज़ साम्राज्य से टकराने वाला वह पहला डोगरा योद्धा था । 1848 ई. मे उसने जम्मू और नूरपुर के पहाड़ी क्षेत्रो से फौजियो की कमान करते हुए सशस्त्र विद्रोह करके शाहपुर कंढी पर कब्ज़ा किया । नूरपुर रियासत की आज़ादी की घोषणा के साथ ही जम्मू और जसरोटा क्षेत्र के चार सौ मन्हास ओर पठानिया वशों के सैनिक मगल सिंह के नेतृत्व मे रामसिह पठानिया से आ मिले । उधर आज़ादी की इस चिनगारी को बुझाने के लिए जालधर के कमिशनर और कागड़ा के डिप्टी कमिशनर फौजी दस्तों के साथ शाहपुर कंढी की ओर बढ़े । इस विशाल सेना के आगे रामसिह का मुट्ठी भर सैनिको के साथ टिक पाना संभव न था । इसलिए, उसने किले से निकलकर जगल में मोर्चे सभाल लिए और शिवा जी की भाँति छापामार युद्ध कौशल का आश्रय लेकर अग्रेज़ों को अपार हानि पहुँचाई । 1849 ई. मे बसोहली रियासत के राजा शेरसिंह ने पाँच सौ फौजियो का एक दल रामसिंह के सपुर्द किया । गुरिल्ला युद्ध जारी रहा । अतत: 'उल्ले दी धार' नामक पर्वतीय स्थल पर आमने-सामने की लड़ाई मे क्वीन विक्टोरिया के निकट संबंधी राबर्ट पील का भतीजा कर्नल जान पील और उसका साथी, रामसिंह द्वारा तलवार के घाट उतारे गए । दोनों पक्षों का भारी नुकसान हुआ । रामसिंह ने कांगड़ा, नदौन, डाडा सीबा, गुलेर आदि के राजाओं से सैनिक सहायता की मांग की, परंतु सब ने न कह दी । रामसिंह छिपते-छिपाते कागड़ा पहुँचे । यहाँ एक ब्राह्मण ने उन्हे शरण दी, किंतु एक राजपूत की गद्दारी के कारण अग्रेज़ो द्वारा पकड़ लिए गए । तब उन्हें कांगड़ा, कलकत्ता और अंततः सिंगापुर

की जेलों में कैद रखा गया, जहाँ 1858 ई. में उनका देहांत हो गया । स्वतंत्रता के निमित्त अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले मगल पाडे और तात्या टोपे समान महान स्वतंत्रता सेनानियो की पक्ति में रामसिंह पठानिया का नाम भी सदा स्मरणीय है ।

रामसिह पठानिया पर अनेक लोक-गाथाएं समस्त पहाड़ी प्रदेश मे प्रचलित हैं । लोक-मानस उसकी वीरता और बलिदान पर बलिहारी है—

"जमदे पकड़ी तलवार राजा,
लहुए दे बगाई दित्ते हाड राजा ।
करी कल्ला पठानिया जोर लड़ेआ ।।"

जन्मजात योद्धा रामसिंह पठानिया ने रक्त की धार बहा दी । एक मात्र हिम्मत के सहारे अकेले पठानिया ने वैरी से लोहा लिया ।

लोक-गाथाओ मे रामसिंह पठानिया का बलिदान तो जीवित है, परंतु किसी भी कवि ने न तो उनके महान बलिदान पर सहारना के दो शब्द ही लिखे है और न ही ब्रिटिश गुलामी के जूए को उतार फेंकने के लिए दिलेरी से बात ही की है । जम्मू या कांगड़ा मे कहीं कोई कलम आज़ादी की नेमतों का गुणगान करने के लिए नही उठी । एकमात्र अपवाद बाबा कांशीराम है, जिन्हें स्नेहवश लोग पहाड़ी गाँधी कहते थे ।

रजवाड़ाशाही के दौर में, जम्मू-कश्मीर में आज़ादी का कोई स्वर उभरने न दिया गया, जबकि पड़ोसी राज्य पंजाब मे आज़ादी के परवाने निरंतर अपने प्राणों की आहुतियां दिए जा रहे थे । रियासत जम्मू-कश्मीर में देश भक्तों की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने के लिए महाराज प्रताप सिंह ने एक सरकारी इश्तेहार जारी किया, जिसमें अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध प्रचार करने वालों को कठोर दंड का प्रावधान रखा गया था ।

सामंती सत्ता अपने हितो के अतिरिक्त इंग्लीशिया हकूमत के हितों का बड़ी मुस्तैदी से परिरक्षण कर रही थी । गुलामी-दर-गुलामी का दौर था । प्रथम विश्व युद्ध से लौटने पर रघुनाथ पलटन की

संस्तुति में लिखी गई पंक्तिया गौर तलब हैं–

"हून तुसें जाई अफ्रीका, साधी,
मारी नसाए जर्मन अपराधी ।
फिरी अंग्रेजी दुहाई ।"

कैसी विडंबना है, प्राण न्योछावर किए भारतीय सपूतों ने, किंतु दुहाई फिरी अंग्रेज़ो की । कवि अंग्रेज़ो की दुहाई फिरने में डोगरा सैनिको के निमित्त बनने पर, उनके अफ्रीका साधने और जर्मन अपराधी को सज़ा देने पर, गौरव का अनुभव करता है । स्पष्टतया यह दुहरी गुलामी की संस्तुति का एक शानदार उदाहरण है । अनपढ़ सिपाही को उस युद्ध का औचित्य समझाने के लिए जिसमें वह सम्मिलित होने जा रहा था, अक्सर कहा जाता कि जर्मन देश का राजा अत्याचार कर रहा है । वह कंस और रावण का अवतार बन कर धरती पर अवतरित हुआ है, जबकि ब्रिटेन नरेश जार्ज धर्म की राह पर चल रहा है । इन भावों की प्रतिच्छाया मथरादास की कविता मे स्पष्टतया उभरी है ।

डोगरा-पहाड़ी क्षेत्र लोकगीतों का अक्षय भंडार है । जहाँ अनेकानेक विषयो पर सुमधुर गीतों की भाव-लहरियां यत्र-तत्र गूजती सुनाई पड़ती है । परंतु यह विचित्र बात है कि रामसिह पठानिया की उपरिवर्णित गाथा के अतिरिक्त भारतीय स्वतत्रता की निशानदेही करता कोई अन्य गीत उपलब्ध नही होता, जबकि रामसिंह पठानिया के हाथो मारे गए कर्नल जीन पील के विषय में डुग्गर मे लोहड़ी पर्व के गीत मे व्यंग्यात्मक वर्णन उपलब्ध होता है । यथा–

"घोड़ी पर काठी,
जीनपाल दा हाथी ।"

कारण साफ है कि इस क्षेत्र में आज़ादी के भाव का स्फुरण नहीं होने दिया गया ।

राज-भक्ति की परंपरा :

जम्मू-कश्मीर में आज़ादी के प्रति बे-परवाही का कारण मात्र सामती सक्तियां ही नहीं हैं । कुछेक और कारणो से भी लोग इस

आंदोलन के प्रति पराङमुख रहे है । लोग इस भ्रम मे थे कि राजा अपना है, इसी सबध से राज भी अपना है । देर बाद जब यह भ्रम टूटने लगा तो दीनूभाई पंत ने इसे यो व्यंजित किया—

"लोक मीहुने मारदे, ए डोगरे दा राज ऐ,
डोगरें दा हाल मंदा, जुड़दा नि साग ऐ ।"

अर्थात्—लोग ताने देते हैं कि अब डोगरों का राज है, इसलिए डोगरा जाति की पौ-बारह है, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि डोगरों की बुरी हालत है । उन्हें खाने के लिए रोटी और शाक तक उपलब्ध नहीं है ।

परंतु यह स्वर तो तब उभरे जब डोगराशाही का ताना-बाना धराशाई होने के लिए चरमरा रहा था । इस से पूर्व, समय के शासक की स्तुति करना डोगरी कवियों के काव्य-सिद्धातो का अंग बन चुका था ।

कवि महता मथरादास एक निष्ठावान राज सेवक के तौर पर सामंती परंपरा के वाहक बने हुए हैं—

"परताप सिंह महाराज जी देओ सीसा,
जेहुदे राज मिले सुख सारे ।

●●●●●

सीसां देओ महाराज गी दिंने-राती,
करदा पालन असें ब्राह्मनें दी ।
मंगो जै-सिरी राजा साहब हुन्दी,
नीति सिक्खी जिनें प्रजा सांबने दी ।"

अर्थात्—महाराज प्रताप सिंह को दिन-रात आशिष दीजिए, जिनके राज्य मे तमाम सुख मिल रहे है । जो दिन-रात प्रजा पालन की नीति पर चल रहे है और ब्राह्मणो के हितकारी हैं ।

इसी भाँति पं. संतराम शास्त्री ने लिखा—

"राज तेरो अटल होवे, प्रजा तेरी सुख बसे,
दुश्मनों का नाश होवे, दुनिया मे तेरो यश बढ़े ।

●●●●

जम्मू भूपति नाम हरिसिंह, इति सुमंगल ।"

•••

धन्यवाद हो जयकार हो, प्रभु राज तेरो स्थिर रहे ।

इसी तरह हरदत्त शर्मा ने लिखा—

"तेरी रक्षा करने गितै धारेआ प्रभु अवतार,
दीन-दुखिए दे दर्दी श्री हरिसिह सरकार ।"

अर्थात्—महाराज हरिसिंह दीन-दुखियों की सुध लेने वाले हैं । वे हमारी रक्षा के लिए ईश्वर का अवतार बनकर अवितरति हुए है ।

इतना ही नहीं, बाद मे डोगरी साहित्य में प्रगतिशीलता के संवाहक बन कर उभरे दीनूभाई पत भी शुरू में इस संस्तुति परंपरा का आश्रय लेने से पीछे नहीं हटे । अपने प्रथम कविता संकलन "गुतलू" में उन्होंने महाराजा हरिसिंह की स्तुति में लिखा—

"इस ताजे विच दिक्खो दया परमेसरें दी,
कैसा मेल मेली दित्ता, हरिसिह हीरे दा ।

••••

अस सारे लोक इस जम्मुआ दे रौहने वाले,
इस शुभ दिनै बिच खुशी ए मनाने आं ।
उस परमेसरें दे तुल्ल महाराजा जी दा,
धन्न-धन्न करि लक्ख जस गान्ने आं ।"

अर्थात्—कश्मीर रूपी ताज पर ईश्वर की कृपा तो देखें कि हरिसिंह के समान हीरा इस मे जड़ दिया । हम तमाम जम्मू वासी, आज के शुभ अवसर पर खुशी मनाते हैं और ईश्वर-तुल्य महाराज का यश गाते हुए ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद कहते हैं कि हमें ऐसा योग्य राजा दिया ।

इन कुछेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि राज-भगती की मिशाल पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती आ रही है । बीसवीं सदी का कवि वर्ग ही जब सामंतशाही को ईश्वरीय देन वर्णित करने लगेगा तो आज़ादी का निषेध करने वाली शक्तियो के चेहरे से पर्दा कौन उठाएगा । कवि वर्ग ही जब दिग्भ्रात होने लगे, तब सामान्य जन का क्या हाल होगा । रास्ता दिखाने वाला ही जब राह भूल जाए

तब दूसरो का पथ प्रदर्शन कौन करेगा ।

इस परंपरा मे एकमात्र अपवाद जम्मू का एक अल्पज्ञात कवि जबरजंग 'बैहमी' है, जिसने' शासक स्तुति का मार्ग त्याग कर जन-साधारण की आवाज़ बुलंद करने का साहस किया, जो उस समय की कवि परंपरा के प्रति असहमति का स्पष्ट स्वर था । महाराज हरिसिंह जब गोल मेज़ कान्फ्रेंस में भाग लेने गए हुए थे, तब अंग्रेज़ों के इशारे पर जम्मू में साम्प्रदायिक तनाव पैदा किया गया और महंगाई आसमान छूने लगी । तब दलित वर्ग के इस कवि ने अपनी कविताओं में वस्तु स्थिति को प्रकाशित किया—

"आ महाराजेआ, दिक्ख जम्मू,
परजा कियां तेरी घबराई दी ऐ ।
दऊ सेर रपेऽ दी निं कनक थ्होंदी,
शउकारें लुट्ट मचाई दी ऐ ।
मिलन पर्चियां नेईं गरीबें गी,
तेरे कंटरोल नै न्हेरी पाई दी ऐ ।
रली करी मनिस्टरें तेरें दे,
मिल्ल आले नै कनक छपाई दी ऐ ।"

अर्थात्—हे महाराज ! तू जम्मू आकार देख तेरी प्रजा किस हाल मे है । रुपए का दो सेर गेहूँ नहीं मिलता, साहूकारों ने लूट मचा रखी है । राशन कंट्रोल विभाग ने अंधेर मचा रखा है, गरीबों को पर्चियां नही मिलतीं । तेरे मंत्रियो के साथ मिलकर मिल वाले ने तमाम गेहूँ छिपाकर अभाव की स्थिति पैदा कर दी है ।

परिवर्तित परिदृश्य और सामंती मोहभंग :

जम्मू में आज़ादी के प्रति विकलता के नदारद होने के पीछे कुछेक कारण इस तरह गिने जा सकते हैं—

1. जन-मानस में प्राचीन संस्कारों की बहुलता, जिनके अनुसार राजा ईश्वर का अवतार माना जाता है ।
2. रूढ़िवादी दृष्टिकोण के कारण जन-मानस का परिवर्तन के प्रति निरुत्साही होना ।

3. यह दिग्भ्रम कि डोगरा कौम का राज है ।
4. अधिकाश जनता का अनपढ़ होना ।
5. सामंती व्यवस्था का कड़ा रवैया ।
6. दलित और मज़दूर वर्ग का पास-पड़ोस के प्रदेशों मे हुए परिवर्तन से बे-खबर होना ।

अज्ञानता का गहरा अधकार था । रियासत के सुवर्ण और गैर-सुवर्ण वर्ग युगों से भ्रांति मे लीन थे और सामंतशाही जुए को खुशी से पहने हुए थे । लोग गरीबी के कारणों के प्रति अनभिज्ञ थे । रियासत का प्रत्येक व्यक्ति दुहरे भ्रम से ग्रस्त था—यह कि रियासत मे मात्र राजा का राज्य है । अग्रेज़ो का राज्य पजाब तक है और यह कि हिंदू होने से राजा अपना है, राज्य हिदुओं के हाथ है । कश्मीरी हिंदू भी इसी सुखद भ्रम में जी रहे थे । जम्मू के डोगरा हिंदुओ और डोगरा मुसलमानो के लिए यही काफी था कि राजा डोगरा है । वस्तुतः रजवाड़ाशाही के दौरान हिंदू और मुसलमानों में मिसाली सौहार्द था । उसमे सांप्रदायिकता सिर ऊँचा नहीं उठा पाई थी । तो भी यह तथ्य है कि महाराज सरकार मात्र अंग्रेज़ी हितों की चौकस रक्षक मात्र थी । इन्ही कारणो से यहाँ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत नही हो पाई ।

डोगरा लोग उपरोक्त कारणों से एक स्वप्न-ससार में जी रहे थे । बदली हुई परिस्थितियो से वे इस कद्र अपिरिचित थे कि भारत की आज़ादी के साथ ही चरमरा कर टूटे डोगरा राजतंत्र ने एकाएक उन्हें मोह-भंग और स्तब्धता की स्थिति मे ला खड़ा किया । जम्मू मे समाज के किन्ही वर्गों को यह यथार्थ स्वीकार करते लगभग एक दशक गुज़र गया कि वास्तविकताए बदल चुकी हैं और यह कि तथा-कथित डोगरा राज, डोगरी भाषी लोगो का राज न होकर एक छोटे-से सामंती परिवार का राज था । किन्हीं लोगो के लिए यह वस्तु-स्थिति अस्वीकार्य थी कि रियासत पर अब कश्मीरी शासन चलाएंगे । जम्मू के डोगरों को बदली हुई परिस्थितियो में एक जबर्दस्त सास्कृतिक झटका लगा था । पुरानी पीढ़ी के लोग जिनकी तमाम निष्ठाएं वशानुगत राज परिवार के प्रति चली आ रही थीं, बदले

हुए परिदृश्य को स्वीकार न कर पा रहे थे । इस पीढ़ी के लोगो में डोगरी कवि शभुनाथ शर्मा भी थे जो आरभ मे इस परिवर्तन के कट्टर विरोधी थे, परतु बाद मे बदले हुए राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य को कुछ बरस मौन रहकर परखने के उपरात कविता के माध्यम से मुखर हुए । एक विचार जो बार-बार हृदय मे उमग कर उनकी कलम की नोक पर टिक जाता—वह था बदलता हुआ समय । पाँचवे दशक के अतिम वर्षों मे राजनीति के परिवर्तित समीकरणो ने ऐसा स्वरूप धारण किया जिन्हे कवि ने जीवन मूल्यो का अवमूल्यन माना ।

ऐसा सुनने में आता है कि शुरु-शुरु मे शंभुनाथ ने रूढ़िबद्धता का परिचय देते हुए, रजवाड़ाशाही तथा राजतंत्र की स्तुति में कुछेक कविताएं लिखी थी, जिन्हें बाद मे भूतपूर्व महाराजा हरिसिह की सेवा में बबई मे रहते हुए कटु अनुभवो के दृष्टिगत उन्होंने नष्ट कर डाला था । आगे चलकर किसी की स्तुति अथवा निदा के बजाय अपने विचारों और मानसिक उद्वेलनो को कविताबद्ध करने लगे थे ।

राष्ट्रीय उद्भावना :

बहरहाल, स्वत्रता के उपरांत, कुछेक कवियो ने आज़ादी, अहिंसा और देश-प्रेम के मूल्यो पर अपनी कलम चलाई है । परतु, यह बात साफ है कि डोगरी कविता मे राष्ट्रवाद दो सतहो पर खड़ा दिखाई देता है । एक वह जिसे हम 'स्थानीय राष्ट्रवाद' कह सकते हैं और जिसमें मात्र डुग्गर की स्तुति गाई जाती है । राष्ट्रवाद का दूसरा धरातल वैचारिकता की दृष्टि से व्यापक होने के कारण 'व्यापक राष्ट्रवाद' कहा जाना चाहिए । इसमे भारत-भूमि का गुणगान किया गया है । किंतु इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि कही-कही स्थानीय राष्ट्रवाद भी व्यापक राष्ट्रवाद का परिपूरक बन जाता है । शभुनाथ ने अपनी कविता 'मेरा डुग्गर' मे जन्म-भूमि की वदना से आरभ करके, इसके अमूल्य प्राकृतिक उपादानो एवं वरदानों की स्तुति करते हुए राष्ट्र के लिए प्राणोत्सर्ग का सकल्प

प्रकट करके सकुचित स्थानीय राष्ट्रवादी विचारधारा का व्यापक राष्ट्रवाद मे समावेष्टन किया है ।

कवि व्यक्तित्व पर प्रभाव :

शंभुनाथ के कविता-व्यक्तित्व के निर्माण मे इस सदी के पूर्वार्ध की परिस्थितियो, समाजिक मर्यादाओ और सास्कृतिक मूल्यों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । उनकी कविता में प्रतिबिबित वैचारिकता वस्तुतः उनका मानसिक द्वन्द्व ही है जो सयमित सोच बनकर धारा-प्रवाह प्रस्फुटित हुआ है । मानस-पटल पर अकित समस्या की पड़ताल के बाद अपनी प्रतिक्रिया को उन्होने शाब्दिक क्रम दिया है ।

शंभुनाथ के व्यक्तित्व के निर्माण मे जिन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियो ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है वे डोगरा राजवंश की तीन-चार पीढ़ियो द्वारा प्रभावित परिस्थितिया रही है । वास्तव मे पाँचवे दशक के अत तक वे आकंठ सामती मानसिकता मे डूबे रहे थे । डोगरा सामतशाही का टूटना उनके लिए एक बहुत बड़ा सदमा था ।

"समय राजा को सड़क का आदमी बना देता है । कोई वस्तु स्थिर नही है"—इस दृष्टिकोण ने उनके मानस मे गहरी जड़ जमा ली थी । निजी जीवन मे मिलने वाली असफलताओ की तुलना वे इस दृष्टिकोण से करके आत्म-तुष्टि पा लेते थे । सन् 47 के आस-पास के वर्षों मे परिवर्तन के तीव्र झझावात के समक्ष वे अवाक् मूक-द्रष्टा बने खड़े थे । असमजस की स्थिति ने उन्हें ज़्यादा ही अतर्मुखी बना दिया और वे पूजा-पाठ मे अधिक समय लगाने लगे थे । बढ़ी हुई धार्मिक निष्ठा और निजी जीवन की अपूर्ण अभिलाषाओ के कारण वे कविता की ओर प्रवृत्त हुए । अततः आत्माभिव्यक्ति का साधन बनने पर कविता उनके लिए सुख का सागर सिद्ध हुई । मित-भाषी शभुनाथ ने राम कथानक को सबल बनाकर अपने अतस् के उलझनपूर्ण द्वन्द्वो से राहत की राह पा ली थी । उनके लिए यह दृष्टात बहुत बडा सबल था कि राम को भगवान होकर जब संसार में दुःख भोगना

पड़ता है तो अंकिचन मानव की क्या बिसात । डोगरी मे रामायण की उद्भावना की पृष्ठभूमि मे यही मनोवैज्ञानिक शक्ति कार्यरत रही है ।

स्वतत्रता से पूर्व वे रजवाड़ाशाही के कट्टर समर्थक तथा राजवंश के प्रशसक रहे थे । वस्तुतः उनका परिवार रजवाड़ाशाही प्रशासन से अपने पीढ़ियो पुराने संबधो से बंधा वफादारी निभा रहा था । आज़ादी के उपरात निजी तौर पर वे नई हवा के समर्थक न थे और रियासत के राजनीतिक परिवर्तन से अत्यत क्षुब्ध थे । व्यक्तिगत वार्तालाप मे वे नए दौर की निंदा किया करते, परंतु इन अनुभूतियों को उन्होंने शब्दबद्ध नही किया, जबकि उनके कवि मित्र अलमस्त ने अपने ऐसे ही विचारो को बेबाकी से शब्दो का बाना पहनाया है ।

शभुनाथ स्वतत्रता के साथ रजवाड़ाशाही की समाप्ति को, डोगरा कौम के ह्रास का आरभ मानने लगे थे । इसी वजह से उन्होने अतिम डोगरा नरेश महाराज हरिसिह के पास बंबई मे उनके निजी प्रबध विभाग मे जाना पसद किया था । वहाँ से लौटने पर इन्हे डोगरी सस्था के मच से अपनी बात कहने का अवसर प्राप्त हुआ । डोगरी सस्था से इनका संपर्क इनकी वैचारिकता को परिपक्वता प्रदान करने का साधन बना ।

प्रगतिवादी प्रवृत्ति के साहित्य में सभ्रात वर्ग के बजाय मज़दूर-किसान एव मेहनतकश वर्ग को प्रतिष्ठित किया जा रहा था । स्तुत्य वह है जो खेतो में फसल उगाता है, वह नही जो काँच के महलो में बैठा मौज उड़ाता है । सुख का सृजक वह है जो अपने खून-पसीने से साधनो को उत्पन्न करता है, न कि वह जो मात्र शोषणवादिता के उपक्रम से उनका उपभोग करता है ; इस बात की समझ आते ही शंभुनाथ ने कविता में जीवन के कटु अनुभवो को, मेहनतकश के दुःखो को तथा गरीबो के यथार्थ को अपनी रचनाओं मे समुचित स्थान प्रदान किया । इस वैचारिकता के पनपते ही रजवाड़ाशाही की टूटन को कवि शभुनाथ सहजता से हृदयंगम तो कर पाए, किंतु प्रगतिवादी धारा मे कुछ देर वह

ज़रूर बहते रहे, परतु साम्यवादी न हुए । प्रगतिवाद को उन्होने खरी और सच्ची बाते कहने का एक माध्यम मात्र माना ।

परतु यह स्पष्ट है कि 1950-55 ई. तक वे अर्वाचीन मूल्यों के कट्टर विरोधी और परपरागत जीवन शैली के प्रबल समर्थक बने रहे । कभी-कभार अतीत के प्रति मोह प्रकट करके अथवा सामती मूल्यों की प्रशसा करके वे पॉचवे दशक के उपरांत उभरे नैतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक सकटो के प्रति अपनी अरुचि प्रकट कर दिया करते । वे अपने समय के प्रति सजग रहे । आज़ादी के सक्रांतिक वर्षों मे अर्जित अनुभवो का कविता में उपयोग करके उन्होंने विचार-सपदा को काव्य-संपदा में परिवर्तित करने का महती कार्य सफलता से संपन्न किया ।

जीवन-वृत्त

प्रवृत्तिवाद और पलायन :

> "सुनाऊ क्या कहानी अपनी ए तकदीर,
> हर मोड़ पर नित पैंतरे बदलती है ।"
>
> —शंभुनाथ

शंभुनाथ ने अपनी रचनाओ में अनेक स्थानो पर अपने जीवन और वैचारिकता के विषय मे बात की है । इन अतः साक्ष्यों के आधार पर यदि शंभुनाथ के कृतित्व का लेखा-जोखा किया जाए तो उसे उनके व्यक्तित्व का दर्पण मानना पड़ेगा ।

अपने जीवन को वे अपूर्ण अभिलाषाओ की व्यथा-यात्रा मानते है । उनकी क़लम से बार-बार यह भाव निःसृत होने लगता है कि सदा दूसरो के लिए खटते हुए, अपनी एक भी अभिलाषा पूरी नही हो पाई । कवि की इस कमज़ोर रग का रह-रह कर दुखने लगना, मुख्यता इस बात की पुष्टि करता है कि उसने जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखे है । कड़वाहटो का उसके पास ऐसा भंडार है जो रह-रह कर वर्तमान को सालने लगता है । यह बोध रहते हुए भी कि मानव जीवन जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में फैला अभिलाषाओ का रेगिस्तान है, कवि का बारबार मृगतृष्णा से व्याकुल हो उठना, उसके जीवन की प्रवचनाओं की पुष्टि करता है ।

सुख-दुख की धूप-छाँव मे जी रहा मानव याज्जीवन अभिलाषाओ के गहन वन से बाहर निकल नही पाता । सामाजिक ढाँचे मे उपलब्ध साधनों के अभाववश और व्यक्ति द्वारा वाछित से अधिक के संग्रह की प्रवृत्तिवश अभिलाषा पूर्ति के क्षेत्र में ऐसा व्यक्ति सदा घाटे मे रहता है जो सामाजिक एवं नैतिक मर्यादायो का सम्मान करता रहे । शंभुनाथ इन मर्यादाओं के बंधन में रहकर आत्मिक अह और

गौरव के साथ-साथ अभिलाषाओ की पूर्ति ही चाहते थे, जिसका सयोग विरल ही होता है । अधिकांश कष्ट, शारीरिक एवं मानसिक वेदनाए प्रायः अधूरी अभिलाषाओं से उपजती है । किंतु यह भी सत्य है कि बिना अभिलाषाओ के टकराव के न तो साधन उत्पन्न होते हैं और न मानवता ही विकास की ओर बढ़ पाती है । अध्यात्मवाद मे सतोष को सुख का मूल कहा गया है और इसके लिए अनिवार्य शर्त है अभिलाषाओ का त्याग । परंतु प्रवृत्तिवाद भौतिक दृष्टि से इस आचरण का अनुमोदन नही करता । उसका मुख्य तर्क यह है कि यदि मानव में इच्छा, आशा और अभिलाषा के बीज-बिदु न होंगे तो यह जीवन किस काम का । शभुनाथ के जीवन का पूर्वार्ध प्रवृत्तिमार्गी दृष्टिकोण का अनुगामी है । वह जीवन के राग-रंग, सुख-ऐश्वर्य एव सफलता का आकाक्षी है ।

निरंतर दुःख और मानसिक क्लेश बने रहने के कारण वे धीरे-धीरे नियतिवादी होने लगते है । रियासत की राजनीतिक एव सामाजिक व्यवस्था मे हुए आमूल-चूल परिवर्तन के कारण अतीत से उन्हें विदारक मोह-भंग हुआ था । निराशा के गहन गर्त में पड़े वे निरतर मनन करते रहते । उसकी कविताओ में इस गहन चिंतन का सूक्ष्म अंकन जहाँ तहाँ देखा जा सकता है । जीवन के उत्तरार्ध मे जब निराशा और मोहभग की स्थिति को कविता के माध्यम से व्यक्त होने का अवसर मिला तो यह स्थिति भाग्यवाद में परिवर्तित हो गई । अततः भाग्यवाद से अध्यात्मावाद की ओर बढ चले । रामायण लेखन में उनकी प्रवृत्ति वस्तुतः नियति से मिली निरंतर पराजय की प्रकृत परिणति है । अतएव राम-कथा उनके लिए मनस्तोष की शरण-स्थली भी है ।

जीवन की परिपक्व दशा में अध्यात्मवाद की ओर उन्मुखता एक प्रकार से उनकी प्रवृत्तिवादी दर्शन से निवृत्तिवादी दर्शन की ओर की उन्मेष यात्रा है । इस यात्रा में अधूरी अभिलाषाओं की उड़ान थम कर यथार्थ का धरातल तलाशने लगती है । सभवतया रामायण के लेखन से कवि को व्यक्तिगत जीवन की असफलताओ का समाधान मिला था । यदि सर्वशक्तिमान प्रभु भी इस धरती पर अवतरित

होकर दुःख झेलने को बाध्य हैं तो साधारण जन की बिसात ही क्या । अतएव रामायण का लेखन शंभुनाथ के लिए निजी सवेदना को उदात्त धरातल प्रदान करने का माध्यम बनता है ।

उनकी वैचारिकता जहाँ विभिन्न रचनाओं मे विस्तार पाती है, वहीं उनका जीवन भी इनमें साथ-साथ प्रतिबिबित हुआ है । गृहस्थी संबधी एक कविता मे कवि ऐसे गृहस्थ जीवन को धिक्कारता है जो अभावो और निर्धनता से घिरा हुआ हो । किंतु वह ऐसे व्यक्ति को धन्य-धन्य कहना नही भूलता जो इस कठिन चुनौती से हंसकर जूझता हो । यदि कवि सार्वजनीन दुःख एव कलेश की बात करता है तो उसका निजी अनुभव भी अनायास ही उसमे प्रतिफलित हो उठता है । दुःख, पीडा, मानवीय वेदना अथवा कष्टों पर लेखनी चलाते हुए वह सहसा भावुक होकर विषय को निजता के द्रष्टिकोण से प्रस्तुत कर देता है । कतिपय कविताए अथवा कविता-अंश मूलतः आत्मपरक ही हैं ।

कवि की मान्यता है कि ऐसा जीवन अकारथ है जो पूरी उम्र पिसौना पीसते गुज़र जाए । जीवन रूपी भारी-भरकम चक्की मृत्युपर्यंत काम-काज मे व्यस्त रहती है । यह ऐसी विचित्र चक्की है, जिसे घुमाने के लिए कोई हत्थी तक नहीं लगी हुई । यह स्वतः प्रवृत्त है । इस कविता में कवि के दृष्टिकोण की नियतिवादी परिणति स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है ।

जीवंत संघर्ष गाथा :

इनका जन्म 5 दिसंबर 1906 ई. को पूर्णिमा पक्ष में गुरुवार के दिन हुआ । पिता पं. गंगाराम जम्मू नगर से पूर्व दिशा मे लगभग अढ़ाई कोस दूर स्थित एक सुरम्य गाँव पलौहड़ा में जम्वाल जाति के ब्राह्मण पं. चक्रपाणि के चौथे पुत्र थे । जम्वाल ब्राह्मण जम्मू के आदि ब्राह्मण माने जाते हैं । प्राचीन काल में यह राजवश के गुरु माने जाते थे ।

पलौहड़ा का शाब्दिक अर्थ है, पलाश वन । पलौहड़ा के इस सुप्रसिद्ध घराने की एक विशेषता यह रही है कि इसकी प्रत्येक शाखा

मे प्रायः एक न एक कवि ज़रूर हुआ है । इस वंश की विभिन्न शाखाओ में हुए सुप्रसिद्ध कवियो मे हरिशचद्र, हरदत्त शर्मा, गगाराम, शंभुनाथ, रामनाथ तथा पीताबर पारखी के नाम उल्लेख योग्य हैं ।

शभुनाथ के पिता प. गंगाराम श्रीनगर के तारघर मे तारबाबू थे । सन् 1908 ई. मे जब शभुनाथ मात्र अढ़ाई वर्ष के थे इनकी माता की मृत्यु से ममता की स्नेहिल छाया इनके सिर से हट गई । तदुपरांत इन्होने कुछ दिन अपनी बड़ी बहन ईशरो के संग दादी मा की दुलार भरी गोद मे गुज़ारे । पिता ने भरसक स्नेह दिया, किंतु मां की ममता की भरपाई दुनिया की कोई वस्तु कर पाती तो मां, ममता और स्नेह का शाशवत प्रतीक क्योंकर बनती । शिशु शभु के पालन-पोषण और देखभाल के लिए पिता ने दूसरा विवाह किया ।

नई मा से और उससे हुए बच्चों से इन्हें भरपूर स्नेह और आदर मिला परंतु मा के देहात ने शभुनाथ के बाल-व्यक्तित्व मे जो शून्य-सा पैदा कर डाला था—वह जीवन भर उन्हे सालता रहा । उनमे अतर्मुखी व्यक्तित्व विकास पाने लगा था । कष्टो को हसकर झेलने और हृदय मे समाने के वे अभ्यस्त होते चले । बाल मानस मे उभरे शून्य से उन्हें बहुत बाद मे मुक्ति मिली थी, जबकि वे कविता द्वारा अपनी घुटन और अतर्वेदना को व्यक्त करने लगे थे ।

पर-दुःख कातरता, मानवीय कष्ट, अभाव और वचनाओ की काव्याभिव्यक्ति उनकी कविता की मानो धड़कन ही है । इसलिए यदि माना जाए कि छुटपन मे मातृ-वात्सल्य के अभाव ने उन्हें तकलीफो को शिद्दत से अनुभव करने की आदत डाल दी थी तो शायद गलत न होगा ।

पिता का स्थानातरण होने से शभुनाथ भी उसके संग अस्कर्दू पहुँचे । वहा छः वर्ष की आयु में इन्हें स्कूल मे प्रविष्ट कराया गया । पिता जो कि आरंभ में 'सिग्नेलर' और 'हेड क्लर्क' रह चुके थे बाद में 'टेलीग्राफ मास्टर' और अंततः 'स्टेट टेलीग्राफ मास्टर' के रूप में राज्य सेवा में रहे । उनके साथ शंभुनाथ को रियासत के दूर-दराज इलाकों में रहने और वहाँ का जनजीवन देखने का

अवसर मिला । अस्कर्दू के उपरात इनका शिक्षण श्रीनगर और जम्मू मे हुआ । 1922-23 ई. मे इन्होने जम्मू के प्रसिद्ध 'रणवीर हाई स्कूल' नामक विद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की ।

मैट्रिक में पढ़ते हुए 17 वर्ष की आयु मे इनका विवाह 'हैल जट्टां' नामक गॉव के इक धनाढ्य ब्राह्मण परिवार मे हुआ । विवाह के तीन वर्ष बाद गौना हुआ । मैट्रिक के उपरात 'प्रिंस ऑफ व्हेल्ज़' नामक कालेज मे फर्स्ट इयर मे प्रवेश लिया । कालेज जीवन मे हाकी के एक नबर खिलाड़ी माने जाते थे और कालेज टीम का प्रतिनिधित्व करते थे । एक दिन खेल के सिलसिले में कालेज के क्रीड़ा इंचार्ज से तू-तू, मैं-मैं होने पर इन्होने न केवल हाकी टीम छोड़ दी, बल्कि कालेज भी छोड़ दिया ।

स्वभाव के मृदु थे, किंतु जहॉ अन्याय होता देखते वहां तैश में आ जाते । परिणाम की चिंता किए बिना झगड़ पड़ते । अब तक इनका रोबीला-दंबग व्यक्तित्व निखरने लगा था । लंबा कद-बुत, गठीला और कसरती शरीर और भारी, खनकदार, ओजस्वी आवाज । फुर्तीली चाल-ढाल से यो दिखते मानो कोई फौजी अधिकारी हो । रियासती सेना में इन्होने लैफ्टीनेट के पद के लिए प्रयत्न भी किया था । हर भाँति से योग्य होते हुए भी इन्हें सेना में सेवा का अवसर मात्र इस वजह से न दिया गया कि यह जाति के ब्राह्मण थे । इसी तरह वन विभाग मे रेंजर के पद के लिए परीक्षा दी । परंतु, दौड़ के दौरान पाँव मे टूटे शीशे की किरच से गहरा घाव हो जाने से बेहोश होकर गिर पड़े । अतएव नियति ने आड़े आकर यहाँ भी चयन मे बाधा खड़ी करदी ।

1925 ई. में रियासत के उद्योग और व्यापार विभाग में साढ़े तीन वर्ष के लिए बतौर परिवीक्षार्थी कार्य किया । तदुपरांत यह काम रास न आया तो तार सिग्लेनर का काम सीखने लगे । अभी प्रशिक्षण चल ही रहा था कि इन्हें इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस के कार्यालय मे क्लर्क की नौकरी प्राप्त हुई । वह स्वयं कहते कि मेरी जीविका लगाने का श्रेय आई.जी. पुलिस ठाकुर गंधर्व सिंह पठानिया को जाता है । बाद में ट्रेफिक पुलिस मे स्थानांतरण हुआ जहाँ से

तीन वर्ष के बाद इन्हें गुप्तचर विभाग में भेजा गया । यहाँ एक वर्ष तक रहे ।

क्लर्की करते हुए इनका खेल प्रेम यथावत् जारी था । फुटबाल की क्षेत्रीय प्रतियोगिताओं मे रियासती पुलिस टीम का प्रतिनिधित्व करते रहे ।

स्वभाव से चूंकि तेज़-तर्रार थे, इसलिए तुनक-मिजाज़ लोगों से इनकी बन नहीं पाती थी । एक बार ट्रेफिक पुलिस के सुप्रिटेंडेंट से कहा-सुनी हो गई तो रियासती मंत्री खुसरो जग के सचिव चेतराम चोपड़ा की सिफ़ारिश से 'मनिस्टर इन वेटिंग' के कार्यालय में बतौर अकौंटेंट नियुक्त हुए ।

1948 ई. में जब महाराजा हरिसिंह सत्ता-च्युत होकर बंबई मे निर्वासित जीवन व्यतीत करने के लिए गए तो शभुनाथ भी उनके निजी स्टाफ मे बबई चले आए । वहाँ कुछेक वर्ष काम किया । फिर जम्मू में रीजेट डॉ. कर्णसिह के कार्यलय मे स्थानातरित कर दिया गये ।' यहाँ से यह प्रथम जनवरी 1961 ई को सेवा निवृत्त हुए ।

लगातार तकलीफो का सामना करते हुए संघर्षरत रहने का स्वभाव बन चुका था । वे उन लोगो मे से नही थे जो सेवा निवृत्ति के पश्चात् बेकार बैठकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगते हैं । इसलिए मृत्यु-पर्यंत एक भी दिन वे बेकार न रहे । सेवा निवृत्ति के पश्चात् उन्होने स्वर्ण थियेटर और फिर इस्पात निर्माण उद्योग मे बतौर अकौंटेंट काम किया । जीवन के अतिम दिनो मे वे 'ईस्टर्न ट्रेडर्ज़ जम्मू' मे कार्यरत रहे । 4 जून 1977 ई. को 72 वर्ष की आयु मे हृदय गति रुक जाने से इनका देहांत हुआ । इससे पूर्व इन्हें पहला दिल का दौरा 1972 ई. मे तब पड़ा जब यह दत्त-चित होकर म्यूनिख ओलिम्पिक्स मैच की रेडियो कमेंट्री सुन रहे थे । पेनल्टी कार्नर को गोल मे न बदल पाने से भारत की हार की खबर पाकर उन्हें तीव्र दिल का दौरा पड़ा था और अंततः दूसरी बार तब पड़ा जब उन्होंने अपनी वसीयत के संबंध में अपनी छोटी बेटी को जम्मू बुलाया था । अपनी बेटियों को ही वे पुत्र मानते थे । बेटी को

हृदय से लगाते हुए खुशी और स्नेह के प्रबल उच्छाह मे उनकी हृदय गति थम गई ।

यदि कम शब्दो मे शभुनाथ के जीवन-वृत्त को व्यक्त करना अभीष्ट हो तो उन्हें जीवंत सघर्ष कहना सर्वाधिक उपयुक्त होगा । जैसे-जैसे उम्र बढ़ रही थी, कवि शंभुनाथ में यह भावना घर करती जा रही थी कि आयु थोड़ी है और काम बहुत ज़्यादा हैं । इसीलिए उन्होंने इस भाव की व्यंजना अपनी कविताओं में भी की । इस अनुभूति में चाहे उस मंजिल की ओर इशारा है जहाँ श्वास पूर्ण विराम पा लेते हैं—परंतु, व्यर्थ मे बीत चुकी जीवन अवधि की ग्लानि कवि को निरंतर सालती रही है । इसलिए वह मृत्यु भय से नहीं, अपितु पश्चाताप बोध से पीड़ित है । उसे अहसास है कि आज, कल और परसों आते हैं, दिन गुज़र जाते हैं । समय का पहिया अबाध गति से घूमता रहता है । आदमी निरर्थक रोने-धोने में जीवन व्यतीत कर देता है । लगातार बहते नीर की भाँति आयु का प्रवहमान दरिया, बिन रुके आगे बढ़ता रहता है । बचपन तरुणाई में और जवानी बुढ़ापे में बदल जाती है । दुनियादारी के काम-धंधो मे उलझा आदमी अपना मूल उद्देश्य भुला देता है । फिर बुढ़ापे में जब ठोकर लगती है तो उसकी होश लौटती है । उसे लगता है चार दिनों की जीवन अवधि कितनी कम है । ज़िंदगी मे किए जाने योग्य कामों की भरमार है । हाथ-पाँव पटकते उम्र बीत जाती है और सामने मौत खड़ी दिखाई देने लगती है ।

इस भावानुभूति में जीवन के प्रति उन्मुखता की बात भुलाकर कवि जीवन के मूल ध्येय की ओर ध्यान केंद्रित करता है । यदि जन्म और मरण के बीच की अवधि का सदुपयोग न किया जाए तो जीवन का प्रयोजन क्या रह जाएगा । शरीर धारण करके मर जाना ही सब कुछ नही है । वह प्रवृत्ति में निवृत्ति की तलाश को भी महत्त्वपूर्ण मानता है । धनोपार्जन प्रवृत्तिवाद का आवश्यक अग है, परंतु कवि की धारणा है कि यह धन प्रभु भक्ति का होना चाहिए । कवि ग्रंथों का पठन-पाठन भी आवश्यक मानता है । उसके कथानुसार इसी से कल्याण संभव है ।

जीवन विषयक उनकी धारणाएं बड़ी सरल हैं । उनका कथन है कि प्रत्येक जीव यहाँ विगत जन्म के कर्मों का ऋण उतारने आता है । 'मुझे भी बेटियो का कर्ज़ा देना है । जैसे ही यह उतरेगा वापस लौटने की तैयारी होने लगेगी । जो कुछ होता है वह प्रभु इच्छा का प्रतिफल है ।'

घरेलू सुख न मिल पाने को भी वे प्रभु की इच्छा कहकर झेल जाते । एक बार श्रीनगर में इनकी गर्भवती पत्नी द्वारा कड़ाके की ठंड मे नहा लेने से गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो गई थी । इस मर्माघात को बर्दाशत न करके वह पगला गई थी । मृत्यु-पर्यंत वह 25-26 वर्ष तक इसी दशा मे रही । वे निरंतर उसकी चिंता में निमग्न रहते और भरसक उसकी देखभाल करते । 1975 ई. मे धर्मपत्नी का देहात होने के बाद वे बराबर गंभीर और संजीदा रहने लगे थे । कभी-कभार होठों से यह शब्द फिसल आते—"वह वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रही है ।" अंततः दो वर्ष बाद वे चल बसे ।

विमाता से इन्हे पूर्ण वात्सल्य और अपनत्व मिला था । विमाता से हुए दोनों पुत्र कहने भर को सौतेले भाई थे, किंतु यदि कोई यह शब्द उनके सामने कह देता तो यह नश्तर की तरह इन्हें घायल कर जाते । वे दोनों भाई इन्हे परिवार का मुखिया मान कर यथोचित सम्मान देते और प्रत्येक काम इनकी आज्ञा से करते ।

शंभुनाथ यद्यपि शुरु में स्वयं गरीबी से दो-चार रहे थे तो भी आजीवन त्याग भावना और हृदय की विशालता का उदाहरण बने रहे । 'टागे वाली गली' मे एक छोटा-सा पैतृक मकान था, जिसे इन्होंने सौतेले भाई देवराज के लिए 1955 ई. मे छोड़ दिया और स्वय अलग मकान बनाकर रहने लगे । देवराज से बड़े रामनाथ से इन्होंने कहा कि तुम्हारे में सामर्थ है, इसलिए अलग मकान बना कर रहो ।

विमाता इन्हें सगे पुत्रों से बढ़कर प्यार करती । इसीलिए शभुनाथ की मृत्यु पर उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया और ठीक एक महीने बाद उनका देहावसान हुआ ।

सामती दौर के संयुक्त पारिवारिक ढाँचे मे व्यक्ति किन्ही कुल

मर्यादाओ को विरसे में पाता था । निजता के स्थान पर सामूहिकता, स्वार्थ के स्थान पर परार्थ की भावनाओ का आधिक्य था । छोटे-बड़े के आदर और परस्पर स्नेह के वातावरण में डोगरा समाज बंधा हुआ था । पं. गगारम का परिवार मध्यवित्त परिवार था । परंपरागत रिवायतों को निभाने के लिए तमाम आमदनी खर्च हो जाती थी ।

इमानदारी, कर्तव्य-निष्ठा एवं चारित्रिक दृढ़ता के गुण शंभुनाथ ने पारिवारिक विरासत में पाए थे । वे नफासत-पसंद थे । अच्छा खाना-पीना और पहनना, डोगरा सस्कृति के सलीके पर चलना, उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी । ब्रीचिस कोट, चूड़ीदार पायजामा और डोगरा पगड़ी उनके व्यक्तित्व पर खूब फबती थी । सामंती दौर में जब कभी राज दरबार सजता, कोई विशेष कार्यक्रम होता अथवा राज परिवार के किसी व्यक्ति का जन्म दिन समारोह होता तो युवराज कर्णसिंह को पगड़ी बंधवाने के लिए इन्हें बुलावा भेजा जाता ।

शंभुनाथ को सुर और सगीत का स्वानुभूत ज्ञान था । आवाज़ मिठास भरी थी । बाद में पं. दुर्गा दत्त के सगीत विद्यालय में सगीत का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया । डोगरी कवि यश शर्मा की बेटी सीमा शर्मा जो आज भारतीय गायकी मे विशेष, स्थान बना चुकी है, को सगीत का प्रारंभिक ज्ञान शभुनाथ से प्राप्त हुआ था । वे कविता पाठ के समय माईक की आवश्यकता अनुभव नहीं करते थे । जिन नाटकों मे वे अभिनय करते थे, उनमे गीत भी स्वयं ही गाते । उनकी सुरीली आवाज़ मे गाए गए गीत प्रायः नाटक का उत्कर्ष बन जाते ।

वे अच्छे धावक थे । अखाड़े मे प्रायः दड पेलने भी जाया करते । शरीर पर लगी मिट्टी मानो उनकी देह का शृंगार थी । एक अच्छे खिलाड़ी की भावना से वे सदा प्रफुल्ल बने रहते । हृदय मे वेदना होते हुए भी चेहरे पर सदा मुसकान खिली रहती । घर में गाते-गुनगुनाते दाखिल होते और खिलखिलाते हुए बाहर आते । बड़ो का सदा आदर-सत्कार करते । एक बार अपने वृद्ध ताऊ प. संतराम वेदपाठी को वे पुरमंडल स्थित सत्यवती की

पहाड़ी पर एक ही सांस में उठाकर ले गए थे । इसी पहाड़ी पर जम्वाल ब्राह्मणो की कुलदेवी की प्राचीन देहरी है । ब्राह्मणो की इस प्रशाखा की तमाम मांगलिक कुलरीतियां इसी देवी से सबद्ध है ।

कुलदेवी सत्यवती की कथा :

जम्वाल घराने के एक पुरखे का जन्म गंगोचक नामक गॉव मे हुआ । प्रथम विवाह मे सन्तान प्राप्त न होने पर इन्होंने दूसरा विवाह 'भटोली गढ़ोटा' गाँव के मंगोत्रा कुल मे रचाया । इनकी बारात तिरछा नामक क्षेत्र से गुज़र गई, परतु इनका कुल पुरोहित पीछे छूट गया । जब पुरोहित तिरछा क्षेत्र से गुजरा तो स्थानीय जागीरदार ने बारात का राह-गुज़र कर मागा । सामती अत्याचारों का युग था । पुरोहित के पास धन नही था । इसीलिए विवशता मे उसने वह दुशाला जागीरदार के पास रहन रख दिया जो कि विवाह मे बेदी की रस्म मे वाछित था । अतः भाँवरो से पूर्व जब दुशाले की आवश्यकता पड़ी तो पुरोहित का उत्तर सुनकर वर बने जम्वाल पुरखे को बेहद अपमान महसूस हुआ । मन ही मन एक गाँठ बन गई । उर्दू कहावत है—"कहरे दरवेश, बजाने दरवेश ।" अर्थात् सत क्रोधित होगा तो अपने प्राणो पर खेल जाएगा ।

अतः बारात की वापसी पर जागीर के हाकिमो से भेंट होते ही वह ललकार कर बोले—"ले, मै तुझे फल्याना (कर) देता हूँ ।"

ऐसा कह कर जम्वाल पुरखा एक कटार लेकर बोहड़ के पेड़ पर जा चढ़ा और वहाँ बारंबार वही शब्द "ले फल्याना देता हूँ तुझे," दुहारते हुए पेट मे कटार घोप कर उसने आत्मघात कर लिया । शरीर धरती पर आन गिरा । नव-ब्याहता वधू पालकी से निकल कर पति के शव के साथ सती हो गई ।

सामंती युग में सामाजिक अन्याय और जोरावर वर्ग के अत्याचार के प्रतिकार के लिए जम्मू क्षेत्र में आत्मघात प्रथा और सती प्रथा का अत्यधिक प्रचलन था । चूंकि साधारण जन सामंती वर्ग के अत्याचारों का मुकाबला करने में अपने को असमर्थ पाता था—इसलिए

इस लोक-विश्वास के प्रभाव तले आत्मघात अथवा आत्मदाह कर लेता था कि ऐसी मृत्यु के उपरांत वह अत्याचारी से बदला लेगा । स्वेच्छा से ऐसी मृत्यु का वरण करने वाले व्यक्ति को उसके कुल के लोग कुलदेव मान लेते थे । और अपने कुल की जन्म, मुंडन, विवाह आदि प्रथाओ को उससे सबद्ध कर देते थे । मांगलिक अवसरो पर अब भी प्रत्येक डोगरा घराना अपने कुलदेव की अर्चना करके ही ऐसे शुभ कामो का समारभ करता है । जम्वाल कुल की कुलदेवी और पुरखे का देहरा जम्मू के पुरमडल नामक तीर्थ स्थल पर स्थित है ।

शंभुनाथ जी के चचेरे भाई पं. पीतांबर पारखी ने सत्यवती से सबद्ध एक अनुष्ठान का वर्णन इस प्रकार किया, "नया अनाज निकलने पर उसका उपभोग शुरु करने से पूर्व बुआ सत्यवती के नाम पर प्रत्येक जम्वाल परिवार 'खारको' के अनुष्ठान को एक विशेष विधि से संपन्न करता है । घर की बड़ी स्त्री एक बड़ा बरतन साफ़ करके रखती है । उसमे एक धुली हुई धोती डालकर उस पर घर के तमाम सदस्यों से एक-एक मूंठ आटा डलवाया जाता है । नीचे धोती होने के कारण बरतन भरा-भरा लगता है । बाद मे इस आटे से 'खजूर' नामक पकवान तला जाता है । इन खजूरों को मात्र परिवार के सदस्य खाते हैं । इन पर किसी बाहरी व्यक्ति की नज़र नही पड़ने दी जाती । यहाँ तक कि पशु, पक्षी अथवा मक्खी-मच्छर भी इसके निकट न पहुँच सकें, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है । इन तली हुई खजूरो के संबंध मे यह वर्जना है कि घर के सदस्यों के अतिरिक्त यह किसी अन्य को न दी जाएं । इस अनुष्ठान की उद्‌भावना उस समय हुई होगी जब किसी समय देश में भयंकर अकाल पड़ा होगा । बाद की पीढ़ियो को अकाल के दौर में सभल कर अनाज का उपयोग करने का संदेश इस प्रतीक द्वारा दिया गया होगा ।

अभिनय के अंकुर :

शंभुनाथ जन्मजात अभिनेता थे और छुटपन से ही रामलीला मे भाग लेने लगे थे । वे प्रायः लक्ष्मण की भूमिका अभिनीत किया

करते । जम्मू से श्रीनगर जाने पर बसंत बाग के मच पर वे नाटकों में भाग लेते रहते । यहाँ तक कि सरकारी सेवा मे जाने पर भी खेल के साथ-साथ धार्मिक नाटको मे बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते रहे ।

अभिनय के अतिरिक्त वह स्वय नाटक लिखने का प्रयास भी करते रहे थे । अनुज रामनाथ ने इन्हें कई बार स्वरचित नाटकों के संवाद सवारते देखा था । परतु बाद मे वे पुरानी पांडुलिपिया नष्ट हो गई । कालेज मे पढ़ते हुए उर्दू भाषा मे लिखे अपने नाटक मित्र मडली मे पढकर सुनाया करते और उनसे विचार-विमर्श किया करते । नाटक विषयक अभिरुचियो के कारण ही बाद में इन का परिचय जम्मू की प्रख्यात रामलीला क्लब के अवैतनिक अधिकारी और महाराज सरकार मे सचिव चेतराम चोपड़ा से हुआ ।

रामलीला के पात्रो और घटनाओ से वे इस कद्र प्रभावित थे कि बचपन से ही नकले लगाने और नाटकीय संवाद दुहराने मे अतीव आनंद अनुभव किया करते । श्रीनगर में एक बार दशहरे में पुतले जलने के उपरात रावण के पुतले से एक बाँस खीचकर घर ले आए । इसे चीर-फाड़ और छील कर एक धनुष-बाण तैयार किया और लगे निशाना ढूँढने । इनका एक सहपाठी था चूनीलाल । वह भी बसत बाग का वासी थी । बालक शभुनाथ ने उससे पूछा—"चूनी, बतला किस लक्ष्य को वेधूं ?"

चूनी ने ललकार कर उत्तर दिया—"मेरे पर निशाना लगा । मै अपनी जगह खड़ा रहकर अपने हाथ से तेरा बाण पकडूगा ।"

उसने इतना कहा ही था कि बाण सीधे आकर आँख में लगा । मुसीबत खड़ी हो गई । चूनीलाल की आँख जाती रही ।

चूनीलाल का पिता मानवता से भरपूर व्यक्ति था । वह बोला—"होनहार बीत गई है । ये दोनो मित्र है । खेल-खेल मे ऐसी होनी बीत गई है जो इन दोनों को सारी उम्र मित्रता की डोरी में बाँध रखेगी ।"

रंगमंच से वाबस्तगी :

पाँचवा दशक जम्मू नगर मे जहाँ राजनीतिक गतिविधियो की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व रखता है वहीं सास्कृतिक गतिविधियां भी इस दौर मे अपने यौवन पर जा पहुँची थीं । नाँटक, कवि सम्मेलन, धार्मिक शास्त्रार्थ और कथा-वार्ता का वातावरण सामाजिक जीवन की धड़कन बन चुका था । किंतु यह तमाम सास्कृतिक गतिविधिया प्रायः हिंदी, उर्दू और पंजाबी मे हुआ करती । उर्दू को राज्य-भाषा बनाए जाने के उपरात रियासत मे डोगरी के प्रोत्साहनार्थ लागू की गई तमाम नीतियां अंधकार मे विलीन हो गई थी । जम्मू मे हिंदी के विकासार्थ साहित्यिक स्तर पर अनेक गतिविधिया चल रही थी । कसबो में रामलीला का प्रचलन था, किंतु गाँवों में 'भगत' और 'हरण' लोक-नाट्य जनता में प्रचलित थे । अतएव कलात्मक गतिविधियो के विकास के लिए उत्साहवर्धक वातावरण विद्यमान था । अनेक नाट्य क्लब और संगीत विद्यालय भी थे । दीवान मंदिर के रंगमच से अनेक सुप्रसिद्ध कलाकार उभरे । यही से युवा निदेशक रत्न शर्मा ने अपने सफल नाटकों के लिए ख्याति अर्जित की थी ।

इसी दशक के पूर्वार्ध में जम्मू के प्रेक्षागृह मे प्रदर्शित 'राम-राज्य' फिल्म ने जम्मू की धर्म पारायण जनता को इस कद्र प्रभावित किया कि फिल्म उतरने के बाद लोगो ने प्रतिभाशाली निदेशक रत्न शर्मा से इस विषय-वस्तु पर एक नाटक प्रस्तुत करने की ज़ोरदार मांग की । ड्रामेटिक क्लब दीवान मंदिर से सबद्ध कलाकारों ने भी इस योजना के प्रति अत्यंत उत्साह प्रदर्शित किया । तब तमाम पहलुओं पर विचार-विमर्श करके रत्न शर्मा ने 1944-45 ई. मे 'राम-राज्य' नाटक का शुभारंभ किया । इस नाटक में बाल्मीकि की महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए तत्कालीन सुप्रसिद्ध कलाकार परसराम नागर, दीवान ईशर दास, डॉ. बलराम और शिवराम मोदी मे से प्रत्येक की हार्दिक इच्छा थी कि यह भूमिका उन्हें मिले । यह चारो कलाकार न केवल जम्मू में रंगमंच के श्रेष्ठ अभिनेता के रूप में स्थापित हो चुके थे, बल्कि दीवान मंदिर के ड्रामा क्लब में इनका प्रभाव भी काफी

था । इसलिए रत्न शर्मा को इस स्थिति मे ऐसा समाधान दरकार था, जिससे किसी की नाराजगी भी मोल न लेनी पड़े और नाटक भी सफल रहे । उनके समक्ष एक चुनौती यह थी कि प्रस्तावित नाटक उसी स्थिति मे जम पाएगा जब यह 'राम-राज्य' फिल्म से ज्यादा कुछ दे पाए । इसलिए बाल्मीकि की भूमिका के लिए उपयुक्त व्यक्ति की तलाश इनके लिए चिता का विषय बनी हुई थी । एक दिन इस विषय पर विचार-विमर्श करने हेतु दीवान मदिर रंगमच क्लब के सचिव रामचद महाजन से मिले । वहाँ शभुनाथ भी बैठे हुए थे । इन पर एक नज़र पड़ते ही रत्न शर्मा ने इन्हे बाल्मीकि की भूमिका मे लेने का मन ही मन निर्णय कर लिया ।

रत्न शर्मा का प्रस्ताव सुनकर शभुनाथ एकाएक खिल उठे और बोले—"मैने राम लीला मे छोटे-मोटे रोल तो ज़रूर किए है, मगर इतनी बडी भूमिका ठीक से कर पाऊंगा कि नही, यह कैसे कहूँ ? वैसे नाटक से ज्यादा मुझे गायन मे रुचि है । इसलिए तुम कोई और सेवा बतलाओ ।"

रत्न शर्मा बोले— "पडित जी, यह भूमिका सिर्फ आपके लिए है । आप ही इससे न्याय कर पाएगे, ऐसा मेरा निदेशकीय अनुभव कहता है ।"

पडित जी मे अभी विनम्र सकोच शेष था, इसलिए मद-मद मुस्कुराते हुए बोले—"मुझे मच पर चढ़ाकर तुम मेरा कार्टून बना दोगे ।"

रत्न शर्मा ने कहा—"आप यह क्यों भूलते है कि आपकी बेइज्जती, मेरी भी बेइज्जती है, क्योकि मै इस नाटक का निदेशक हूँ । इसमे जम्मू के रंगमंच की गण-मान्य हस्तिया काम कर रही हैं और इनमे से यदि आपको बाल्मीकि की भूमिका के लिए चुना है तो ऐसा मै अपने अनुभव के बल पर कर रहा हूँ ।"

शंभुनाथ हंसे—"अरे तो तू इतने बड़े दिग्गजों मे घुसेड़ कर मुझे अभिमन्यु की परीक्षा में डाल रहा है ।"

सहमति का स्वर पहचानते ही रत्न शर्मा ने तपाक से इन्हें इनके लिए लिखी हुई भूमिका की प्रति थमाई और बोले—"तो तय हुआ

कि आपको यह स्वीकार है ।"

शंभुनाथ बोले—"अब मान लिया है तो इसे ब्रह्म वाक्य समझो—अटल ।"

इसके बाद रिहर्सलो का सिलसिला शुरु हुआ जो एक महीना लगातार चलता रहा । इस दौरान रत्न शर्मा द्वारा अपने छोटे भाई के स्थान पर किसी और को एक भूमिका दे देने पर शभुनाथ रूठकर अलग हो गए । उनका कथन था कि यदि आज तू अपने भाई को निकाल सकता है तो कल को मुझे भी निकाल देगा ।

शंभुनाथ जिन परंपरागत मूल्यो में पले-बढे थे और जिन पर उन्हें अटूट विश्वास था उनके वशीभूत वे नाटक की बेहतरी के लिए किए गए परिवर्तन को गलत ठहरा रहे थे । उनका कहना था एक परिवार मे यदि कोई बीमार पड़ जाये तो क्या उसे उठा कर बाहर फेक देना उपयुक्त है ।

रेत के मैदान में पड़ी हीरे की कणी जैसे प्रकाश की एक किरण को चकाचौंध में परिवर्तित कर देती है, उसी तरह इस छोटी-सी घटना से शंभुनाथ की वैचारिकता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । सर्वहित-वादी दृष्टिकोण से वे सब का भला चाहते थे । घर मे मानसिक रुग्णता से पीड़ित पत्नी का दृष्टात सदा उनके सामने रहता, जिसे कि घर से बाहर निकलने से पहले वे कमरे मे बंद करके आते थे ।

बहरहाल, समझा-बुझाकर इन्हें नाटक के लिए तैयार किया गया । 'राम-राज्य' का मचन हुआ और लगातार कई दिन होता रहा । जिन लोगों ने इस कथानक पर बनी फिल्म और नाटक दोनों देखे हैं, वे आज भी इस नाटक को फिल्म की तुलना से अधिक प्रभावशाली प्रस्तुति बतलाते हैं । विशेषतया इस में शंभुनाथ की भूमिका की भूरि-भूरि प्रशसा करने वाले बहुत से लोग आज भी मिल जाएगे ।

'राम-राज्य' नाटक की सफलता की व्यापक चर्चा के कारण श्रीनगर के ड्रामा क्लब द्वारा वहाँ भी इसका एक प्रदर्शन करने का अनुरोध किया गया । जम्मू से मात्र चार कलाकारों को संग लेकर

रत्न शर्मा श्रीनगर पहुँचे । इन कलाकारो मे शंभुनाथ भी थे । शेष कलाकार श्रीनगर से लेकर कुछेक रिहर्सलो के बाद यह नाटक वहाँ प्रस्तुत किया गया । लाहोर की 'पचौली फिल्म कम्पनी' के स्वामी तथा निर्माता दलसुख पंचौली उन दिनों श्रीनगर में थे । वहाँ 'राम-राज्य' नाटक मे शभुनाथ की भूमिका देखकर वह इतने प्रभावित हुए कि इन्हें अपने साथ लाहोर की फिल्मी दुनिया मे चलने का न्यौता दे दिया ।

परंतु कट्टरपथी डोगरा समाज मे उन दिनो फिल्मी दुनिया को चरित्रहीनता का प्रतीक माना जाता था । अज्ञानतावश यहाँ तक कहा जाता कि फिल्मों मे कंजर लोग काम करते हैं । संभवतया अपने पुरातनपंथी और रुढ़िवादी वातावरण के कारण शंभुनाथ को यह न्यौता स्वीकार्य न था । बहरहाल, सनातन धर्म क्लब श्रीनगर के प्रबध में प्रताप भवन मे 'राम-राज्य' के कई प्रदर्शन हुए और शभुनाथ धर्म-भीरू कला प्रेमियों के हृदय के सम्राट बन गए ।

रंगमंच पर जमी धाक :

1957 ई. में रत्न शर्मा ने शभुनाथ को लेकर नया नाटक खेलने का विचार किया । उनके सामने पुनः बाल्मीकि का चरित्र था । परंतु इस बार इस चरित्र को अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया जाना था । 'बाल्मीकि' नामक इस नाटक में बाल्मीकि की ऋषित्व तक की विकास-यात्रा का वृत्तात था । 'राम-राज्य' मे अभिनीत अपनी चिर स्मरणीय भूमिका से शभुनाथ कई गुणा आगे बढ़ गए । इस बात के लिए उन्हें ढेरों बधाइया प्राप्त हुई । इस नाटक मे इन्हें बाल्मीकि की; एक किसान, एक पुत्री के पिता, फिर डाकू और अततः एक ऋषि की भूमिका अभिनीत करनी थी । इसलिए इन्हें बाल्मीकि के चरित्र से सबद्ध चार भिन्न-भिन्न भूमिकाओ को सफलता से करते देख कलापारखी दग रह गए । डाकू की भूमिका में हाथ में कुल्हाड़ा लहराते यह उस चरित्र को प्राणवान बना देते । किसान, बेटी के बाप तथा ऋषि के रूप में भी अपनी भूमिका को जीवंत बना देते ।

डोगरी नाटक 'नमां ग्रां' के मंचन की तैयारी मे रत्न शर्मा पात्रो का चयन कर रहे थे । तब शभुनाथ की इच्छा जानने के लिए उन्होंने इनकी ओर देखा । वे तुरंत बोले—"मेरी ओर क्या देख रहा है । मैं तो घड़े मे बद मछली हूँ । जब जी चाहा निकालकर तरकारी बना ली ।"

यह वह दौर था जब डोगरी भाषा और साहित्य का ज़ोरदार आंदोलन डोगरी सस्था की ओर से चलाया जा रहा था । डोगरी का प्रत्येक लेखक इसके प्रचारक की भूमिका भी निभा रहा था । घरेलू परेशानियों से घिरे होकर भी शंभुनाथ न केवल कविता लिख रहे थे, बल्कि डोगरी भाषा और सस्कृति के उत्थान में भी अन्य साथियो से सहयोग कर रहे थे । 'नमां ग्रां' में इन्होंने सेना के सेवा-निवृत्त जमादार की भूमिका निभाई थी । इस नाटक के अनेक प्रदर्शन गाँवो में किए गए । शभुनाथ ने इस नाटक में भी एक मजे हुए मंचीय कलाकार के रूप में ख्याति अर्जित की ।

1956 ई. मे दीनूभाई पत द्वारा लिखित 'सरपच' शीर्षक नाटक का मंचन शुरु हुआ । रतन शर्मा द्वारा निदेशित इस नाटक मे शंभुनाथ ने ज़ालिम जागीरदार बागी के जाति-भाई चौधरी की भूमिका निभाई थी । उनके समकालीन नाट्य कलाकारो का कहना है कि अपनी भूमिका को वे जिस उत्कर्ष पर ले गए थे, उसे देखकर लगता था किसी और कलाकार का स्थानापन्न तो मिल सकता है परंतु शभुनाथ का बदल संभव नही । प्रंसगानुकूल हाव-भाव और भाषा के उतार-चढाव एवं अभिनय कला के अन्य उपादानों द्वारा अपनी भूमिका को वे इस तरह सप्राण बना देते मानो नाटक नहीं यथार्थ जीवन का दृश्य सामने घटित हो रहा हो । इसी कारण समकालीन मचीय कलाकारो में उन्हें एक उच्च स्तरीय कलाकार की मान्यता प्राप्त थी । नाटक की मार्मिक कथा-वस्तु तथा जीवत अभिनय कला मिलकर वांछित प्रभाव को द्विगुणित कर देते थे ।

'मौत मागने से नहीं मिलती । और भीख मांगना हमारा धर्म नहीं ।' यह सवाद दर्शकों की आँखों में आँसू भर देता ।

'सरपंच' नाटक देहात सुधार विभाग की ओर से डोगरी भाषी

क्षेत्र के प्रायः हर बड़े गाँव में खेला गया । इस नाटक के 300 से अधिक प्रदर्शन हुए । एक बार मंचन के साथ-साथ रेडियो कश्मीर जम्मू से इसका सजीव प्रसारण भी किया गया ।

'नमा ग्रा' और 'सरपच' इन दोनो डोगरी नाटको ने निज भाषा के प्रति लोगो के हीनताबोध को तिरोहित करने मे अपूर्व योगदान दिया । अपनी भाषा मे व्यक्त हंसी-खुशी, व्यग्य-विनोद और सृजन की सामर्थ्य देखकर लोग चमत्कृत हो उठे ।

डोगरी भाषा के गौरव-उत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्य मे शभुनाथ ने अन्य डोगरी प्रेमियो के सग सहयोग किया था । उस समय जबकि डोगरी भाषा मे बातचीत तक करना गवारूपन का प्रतीक बना हुआ था; ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करके उन्होने डुग्गर के सास्कृतिक उत्थान मे भागीदारी निबाही थी । अतिम बार शभुनाथ 'सरपंच' के 1970 ई. मे हुए प्रदर्शन मे देखे गए । बाद मे सभवतया जीवन के प्रति दौड़ कठिन मोड़ो में जा पहुँची थी, क्योकि इसके बाद उन्होंने न तो मचीय गतिविधियो मे भाग लिया और न ही साहित्यिक कार्यक्रमो में ही सम्मिलित हुए । लगता है उनका साहित्यिक गुटबदियो और साहित्यकारो की मिथ्या अह-भावनाओ के परस्पर टकराव से मन उक्ता गया था । साथ ही ढलती उम्र के तीव्र अहसास, ज़िंदगी की बढ़ती ज़रूरतो और घरेलू जिम्मेवारियो की चिंता के कारण तत्काल कलात्मक गतिविधियों से चुपचाप अपने को अलग कर लिया ।

समकालीन लोग उन्हें समझदार अभिनेता मानते थे, क्योकि वह भूमिका की सूक्ष्मताओ को स्वतः समझ लेते थे । निदेशक को इन से मत्था-पच्ची नही करनी पड़ती थी । स्थिति के अनुरूप अभिनय में दर्द-प्रेम आदि मनोभावों का यथोचित पुट देकर दर्शको से आहें भरवा देते । मच के साथ-साथ रेडियो नाटकों में भी निरंतर भाग लेते रहते । आवाज़ इनकी मूल्यवान सपत्ति थी ।

अभिनय कला पर इनकी पकड़ के विषय मे इतना काफी है कि 'नमां ग्रा' और 'सरपंच' नाटको की सैकड़ो प्रस्तुतियो के बावजूद, इन दोनो नाटकों मे जहाँ कई कलाकार बदले जाते रहे वही न

इन्हें बदलना संभव हुआ और न ही वे भाषा के प्रति दायित्व से पीछे हटे ।

शंभुनाथ शराफत के पुजारी थे । भूलकर भी पर-निंदा नहीं करते थे । हरेक को उचित सत्कार देते । किसी से दारुण मानसिक क्लेश पाकर भी गाली न निकालते । 'जो प्रभु इच्छा'—इतना भर कह कर सुनी-सुनाई को रफा-दफा कर देते । परिचय की परिधि मे प्रसिद्ध था कि जिव्हा और मन पर इन्हे समान नियत्रण प्रप्त है । किसी भी व्यक्ति के अच्छे या बुरे काम पर कभी टीका-टिप्पणी न करते । सदैव खामोशी को जिरह-बख्तर की तरह धारण किए रहते और किसी के बहकावे में न आते । इसलिए कवि वर्ग में उनके विषय मे प्रसिद्ध था कि वे ऐसी काली कमली है जिस पर दूसरा रग नही चढ़ता । महाराज की चाकरी मे रहते हुए भी कभी शराब-सिगरेट या माँस का सेवन नही किया । इसीलिए महाराजा हरिसिह हंसी-हंसी में इन्हें दालखोर ब्राह्मण कहा करते ।

शभुनाथ रोज़ाना पूजा-पाठ करते और ध्यान लगाते । पूजा के समय महाराज के बुलाने पर भी वे पूजा के आसन से हटते नही थे । महाराजा हरिसिह उनके इस नियम का यथेष्ट सम्मान करते ।

हृदय मे अनेक निराशाए पाले हुए भी वे सदा मुस्कुराते रहते और मित्र मडली मे नित्य नए लतीफे और व्यग्योक्तिया सुनाकर आनद में सराबोर कर देते । छोटों मे छोटे और बड़ों मे बड़े बनने में कमाल की दक्षता प्राप्त थी ।

किस्सा आत्मिक-शक्ति का :

उनकी दृढ़ आत्मिक शक्ति के विषय मे अनेक किस्से प्रचलित है । उनके अनन्य मित्र डोगरी कवि तारा स्मैलपुरी से एक अद्‌भुत किंतु अविश्वसनीय घटना सुनने को मिली, जिसे पाठकों की दिलचस्पी के लिए यहाँ उद्धृत किया जा रहा है ।

एक बार यह दोनों मित्र रेडियो स्टेशन से बाहर आ रहे थे । आत्मिक शक्ति की बात चल रही थी ।

तारा स्मैलपुरी जिन्हें इस समय सर दर्द हो रहा था, बात बदलने के लिए बोले—"पंडित जी आपमें कितनी 'विल-पावर' है ?"

शंभुनाथ गर्व से बोले—"सामने खभे पर जो बल्ब दिख रहा है, उसे आत्मिक बल से फोड़ सकता हूँ ।"

तारा स्मैलपुरी ने चुनौती दी—"तो फोड़ कर दिखाइए ।"

शभुनाथ कवि मित्र को साथ लिए खभे के समीप पहुँचे । स्मैलपुरी भीतर ही भीतर प्रमुदित मन से सोच रहे थे कि बल्ब फटेगा नही और मैं पूछूगा, आपके आत्मबल का क्या हुआ ।

शभुनाथ एकटक बल्ब को निहारने लगे । तभी बल्ब हल्के धमाके की आवाज़ से फट गया । स्मैलपुरी भौचक होकर इधर-उधर देखने लगे कि कहीं किसी ने ककड न मारा हो । पर आस-पास कहीं कोई न था । पंडित जी के होंठो पर मद्धिम मुस्कान खिल रही थी । कवि मित्र स्मैलपुरी ने पूछा—"यदि इस शक्ति का प्रदर्शन किया जाए तो दुनिया वाह-वाह करने लगेगी, आपकी प्रसिद्धि भी होगी ।"

पडित जी असहमति के स्वर मे बोले—"प्रत्येक चीज़ पर वाह-वाह नहीं चाहता आदमी । आत्मिक शक्ति क्या सिर्फ मुझी मे है । प्रत्येक जीवित व्यक्ति इस शक्ति का पुज है । केवल आत्मबल को केंद्रित करने की बात है । फिर इसका प्रदर्शन एक तरह से घटियापन लगता है ।"

तारा स्मैलपुरी के हृदय में बल्ब फटने की घटना के प्रति अभी शका शेष थी, इसलिए वे एक और परीक्षा करना चाहते थे । बोले—"आपने 'विल-पावर' से बल्ब तो फोड़ दिया, अब मेरा सर दर्द दूर करें तो जानू ।"

शभुनाथ ने हाथ के अगूठे और अनामिका अंगुली से स्मैलपुरी के माथे को मध्य से दबाया । कुछ ही पलों में सरदर्द जाता रहा ।

दुःख अपने लिए : हंसी औरों के लिए :

यह सुनने मे आता है कि साहित्यकारों के जमघट मे वे प्रायः

चुप साधे रहते, जबकि असाहित्यिक गोष्ठियो में इतने मुखर हो जाते कि बात-बात पर हंसा देते । एक बार अपने कवि मित्र को इसका रहस्य बतलाते हुए उन्होंने कहा था—साहित्यकारो में गैर-सजीदा होने का अर्थ है अपनी कविता की गहराई को झूठा सिद्ध करना क्योंकि गंभीरता और जिम्मेवारी भरा सदेश देने वाला कवि स्वयं उच्छृखल दिखेगा तो उसकी कविता का प्रभाव आधा रह जाएगा । इसी तरह साहित्यकार मित्रो के आगे अपना दुःखड़ा रोने का क्या लाभ । किसी को हमारे रोने-धाने में क्योंकर दिलचस्पी होगी । आज हर आदमी किसी न किसी तकलीफ मे है । यदि सभी लोग दुःख-पुराण खोल कर बैठ जाए तो ज़िंदगी लानत बन जाएगी । इसलिए बेहतर तो यह है कि कष्टों को भुलाने के लिए चन्द लम्हे हंसा जाए, हंसाया जाए, क्योकि अलग होते ही हमें अपना-अपना दुःख पुराण खोलकर बैठ जाना है । दुःख तो वहाँ है ही जहाँ है, इसलिए क्या यह अच्छा नही होगा कि हम जब मिले हंसते हुए मिले, मुह बिसूरे हुए नही......।"

भाग्य की दुश्चिंता :

पर्याप्त आर्थिक साधन न होते हुए शभुनाथ राजसी शौक पालते थे । शतरज के वे दीवाने ही थे । जहाँ बिसात बिछी देखी, वहीं अकल के घोड़े दौड़ाने लगे । एक बार रोगी पत्नी के लिए दवा लेने निकले । रास्ते में कही शतरंज की बाज़ी लगी देखी । इसमें ऐसे उलझे कि रात को दस बजे दवा की खाली बोतल उठाए घर मे घुसे । इस पर एक परिचित ने प्रेमवश डाँट पिलाई तो अपनी भूल के लिए क्षमा मागने लगे । इसके बाद कभी ऐसी भूल न होने पाई ।

घोड़ो की रेस का भी उन्हें बेहद शौक था । बबई रहते हुए रेस में थोड़ा-थोडा करके वे दस हज़ार रुपये दॉव पर लगा बैठे थे । इससे एक बात अवश्य ही स्पष्ट हो जाती है कि यह दाँव खेलकर उन्होने भाग्य लिपि को बदलने का प्रयत्न एक बार अवश्य किया था । इसमें चाहे असफलता ही क्यो न हाथ लगी हो ।

गृहस्थी का सुख न मिल पाने की वजह से वे दुःखी जरूर थे, परंतु अपने मनोभावो को दूसरो पर प्रकट न होने देते । कई हितैषी दूसरे विवाह की राह सुझाते, किंतु इस तथ्य के बावजूद कि उम्र विवाह के योग्य थी, तो भी उन्होंने इस सुझाव पर विचार तक न किया । वे कहा करते—"मेरे भाग्य मे ही जब यह सब लिखा है तो दूसरी पत्नी भी सुख कैसे दे पाएगी ।" इनके तीन संतानें हुई । तीनों लड़कियो थीं । पुत्र की आशा तो मन मे थी, कितु बेटियों को ही बेटे मानकर मन को मना लेते ।

मानसिक क्लेशो को पचाने की उनमे अद्‌भुत क्षमता थी । परंतु उनके जीवन की असफलताए भी मित्र वर्ग से छिपी न थी । इसीलिए कई बार मित्र सगति में कह दिया करते—"प्रभु जी, हमने भी ज़िंदगी देखी है । इश्क किया है ।"

ज़िंदगी देखने से उनका तात्पर्य ज़िंदगी की रगीनियो से था । परंतु ज़िदगी को किस निगाह से देखा गया था ? इश्क का पात्र कौन खुशनसीब था ? इश्क किया भी था या मात्र दुःखो के जमघट और तज्जनित हीन-भावना से उभरने के लिए की गई कोरी कल्पना मात्र थी । अथवा जीवन के पूर्वार्ध की मृदु स्मृतिया थी । ऐसे अनेक प्रश्न अनुत्तरित पड़े रह जाते हैं । ऐसे कुछेक प्रश्नो के सकेत एव साक्ष्य उनकी कविताओं मे अवश्य उपलब्ध हो जाते है । चंद कविताओ मे उनका प्रेम-पिपासू हृदय अवश्य ही छलकता दिखाई देता है । परंतु, यह ज़्यादा साफ है कि उनकी ज़िंदगी ऊबड़-खाबड़ और कठिन रास्तो से गुज़री थी । समय के प्रबल थपेड़ो को भाग्य की देन मानकर हसते हुए सीने पर झेला था ।

ग़ज़ल

सिले ओठों का दर्द—ग़ज़ल :

"धधुयाता रहा एक अलाव-सा सीने में ।
उम्र बीत गई ओठो को सिए हुए ।"
—शंभुनाथ शर्मा

समाज से मिली प्रत्येक ठोकर लेखकीय अनुभव को समृद्ध करती हुई उसकी रचानात्मक ऊर्जस्विता मे परिवर्तित होती जाती है । सामाजिक परिवेश का गुणात्मक प्रत्यावर्तन किसी भी जीवंत साहित्यिक रचना की मूलभूत शर्त होता है । परंतु साहित्य मात्र प्रतिबिब नहीं होता, यह तो लेखक के कटु एव मृदु अनुभवों का उदात्त प्रस्फुटन है । साहित्यिक कथन मे गूढ़ता, प्रतिक्रिया में प्रेरणा और अभिव्यक्ति मे संदेश अन्तर्निहित रहता है । यही गुण साहित्य को साधारण बातचीत से ऊपर का दर्जा देता है । साहित्य को कल्पना के आकाश से उतार कर यथार्थ के धरातल पर स्थापित करने का आग्रह आज की रचनाधर्मिता का केंद्र बना हुआ है । वस्तुस्थिति के आकलन मे स्वयं सहभागी होकर लेखक निजी भावनाओ को व्यापकता प्रदान करता है । अपनी बात को सब की बात बना कर एक महती दायित्व का निर्वाह करता है ।

ग़ज़ल : डोगरी कवियों का प्रिय निकष :

डोगरी गज़ल में इधर यह आग्रह एक प्रखर एवं चुटीले व्यंग्य के रूप में उभरा है । गज़ल ने समकालीन सामाजिक परिदृश्य पर जिस तीखे अंदाज़ से दो सतरो के शेऽर में बात व्यंजित करने की सलाहियत प्रदर्शित की है—उससे इस विधा के तीव्र प्रसार को सहज ही समझा जा सकता है ।

ख्याल की नज़ाकत और शब्दो की मीनाकारी की वजह से गज़ल

को एक नाजुक विधा का दर्जा हासिल है । मिसरा और मिसरा-सानी की सीमित परिधि में त्रि-आयामी शब्द-चित्र गढ़ने की ललित-कला गज़ल है । गज़ल का शाब्दिक अर्थ है किसी हसीन से बातें करना । और इस अर्थ के अनुसार यह नाज़-नखरे उठाने वाली ऐसी कोमल विधा है जो पारदर्शी शीशे की तरह मानसिक उद्वेगों, वैचारिक ऊहापोहों को स्पष्टता से उजागर कर देती है । निजता के धरातल से ऊपर उठाकर वैयक्तिक अनुभव को सामुदायिक सगति प्रदान करने के लिए कवि इस आत्मनिष्ठ शैली को अपनाता है । स्वानुभूत को सबके अनुभव के व्यापक घेरे मे रखने के लिए दो सतरो के कलेवर का शेऽर कई बार इतना उपयुक्त होता है कि जो बात एक पृष्ठ में कह पाना कठिन हो, उसे एक शेऽर की बदिश मे आसानी से कह दिया जाता है । वस्तुतः गज़ल का एक अच्छा शेऽर विशेष अनुभव का निचोड़ होता है ।

डोगरी भाषा मे गज़ल उर्दू के माध्यम से आई है । चूंकि रियासत जम्मू-कश्मीर में सरकारी काम-काज की भाषा उर्दू है, इसलिए प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति किसी न किसी सीमा तक उर्दू से प्रभावित है । संभवतया यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि उर्दू के बाद किसी दूसरी भारतीय भाषा में गज़ल पक्के पाँव से जम पाई है तो वह डोगरी भाषा है । इसका प्रमाण यह है कि गज़ल विधा ने डोगरी में कविता की मुख्य धारा को प्रायः रुद्ध करके रख दिया है । प्रत्येक छोटा-बड़ा कवि गज़ल लिखने को प्रतिष्ठा का प्रश्न मानकर इस मे इस कद्र निमग्न हो चुका है कि कविता की अन्य शैलियों की धाराएं प्रायः सूख गयी लगती हैं ।

गज़ल लेखन के लिए शब्द-सामर्थ्य के अतिरिक्त भाषा पर नियत्रण होना अत्यावश्यक है ताकि शायर गज़ल के लिए आवश्यक वक्रोक्ति चमत्कार पैदा करने के लिए शब्दों को नए संस्कार दे पाए और उनमें नई रंगते ढूँढ सके । शब्दों के इस कलात्मक समायोजन में अंतिम आधे मिसरे की द्वियर्थकता गज़ल को विशेष अंदाज़ प्रदान करती है । शब्द चयन, वाक्य की बनावट और कवि आशय का अटूट संबध है । इसलिए गज़ल शायर को शब्दों से खिलवाड़ करने और

उनके बहुरंगी अर्थों को व्यंजित करने की छूट देती है । ज़बान की चासनी और लताफ़त जितनी गज़ल मे उभरती है, उतनी और किसी विधा मे नही देखी गई । इसलिए गज़ल को मात्र शब्दो का जाल मानना या वाह-वाही लूटने का सस्ता साधन समझना वस्तुत. एक भूल है ।

डोगरी गजल की उम्र का पसारा विगत तीन दशको मे फैला हुआ है । इस अर्से मे गज़ल ने न केवल अपना काव्यात्मक स्वभाव गढ़ा है—बल्कि डोगरी भाषा मे काव्य-सृजन को एक ऊँचे स्तर तक भी पहुँचाया है । इसके अतिरिक्त डोगरी के रचनात्मक आंदोलन का प्रतिनिधित्व भी गज़ल विधा स्वतः करने लगी है । अपनी काव्यात्मक भूमिका से आगे बढ़कर यह संपूर्ण साहित्यिक गतिविधि की प्रतीक बनी हुई है ।

गजल के उद्गम का श्रेय दीनूभाई पत पाँचवे दशक की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियो को देते हैं । उनका कहना है कि इस दशक में कई कारणों से राजनीतिक वातावरण अस्पष्ट था । जम्मू में भारत के साथ विलय का आंदोलन तीव्र होता जा रहा था । राजनीतिक कर्णधार इधर-उधर पक्ष बदल रहे थे । कवियों के मन कुछ कहने को तड़प रहे थे । वातावरण में घुटन थी, खुलकर कहने की हिम्मत तड़प रही थी । तूफान से पूर्व जैसे चुपचाप और डरावनी परिस्थितिया दिखती हैं, कुछ वैसी ही दशा थी । कवि वर्ग महसूस कर रहा था कि जो होना चाहिए, वह हो नही पा रहा । सीधे बात कहने मे बिगड़ती बात के और बिगड़ने का भय था । असमंजस की इस स्थिति ने डोगरी गज़ल को जन्म दिया ।

परंतु दीनूभाई पत के इस कथन की पुष्टि उस समय रचित साहित्य से नहीं हो पाती । अलबत्ता, व्यक्तिगत विचारधारा अथवा निजी अनुभूति उस समय की गज़ल में अवश्य ही प्रतिफलित हुई है ।

डोगरी गजल का प्रवर्तन वेदपाल 'दीप' द्वारा हुआ और तुरंत ही इस विधा मे कृष्ण स्मैलपुरी, शंभुनाथ शर्मा आदि कवि कलम-आज़माई करने लगे । इनसे पूर्व संतराम शास्त्री स्वरचित गज़लें

हारमोनियम पर गाने-बजाने का अभ्यास किया करते थे, किंतु उनकी पांडुलिपि अभी तक मिल नही पाई ।

शुरु मे गज़ल शैली की प्रासंगिकता को लेकर डोगरी भाषा में अनेक सदेह प्रकट किए जा रहे थे । चूंकि उर्दू में 1935-36 ई. की तरक्की-पसंद तहरीक़ का सफल वहन यह विधा कर सकी थी, इसलिए डोगरी मे इसकी सफलता असदिग्ध थी । वस्तुतः डोगरी के आधुनिक साहित्यिक आदोलन की शुरुआत प्रगतिशील विचारधारा के प्रभाव तले हुई थी । इसलिए इस सपूर्ण आंदोलन में अन्तर्निहित प्रगतिवादिता के कारण और उर्दू का प्रभाव क्षेत्र होने के कारण गज़ल डोगरी साहित्यकारों का प्रिय निकष बन गई ।

परिवर्तन और भाग्यवाद :

यद्यपि संख्या की दृष्टि से शंभुनाथ ने बहुत ज़्यादा गज़लें तो नहीं लिखीं तथापि साहित्यिक दृष्टि से और गज़ल छन्द-शास्त्र के स्वीकृत नियमो के परिपालन की दृष्टि से यह गज़लें अलग हैसियत रखती है । कुलबिल 21 चुस्त-दरुस्त गज़ले लिखकर उन्होंने डोगरी गज़ल की विकास-यात्रा में अपने लिए अलग मुकाम कायम किया । इन गज़लो में कवि के निजी जीवन की झलक मिलती ही है, साथ ही बदलते सामाजिक परिदृश्य का चित्रांकन भी हुआ है । चूकि शंभुनाथ परंपरागत जीवन मूल्यों के साथ-साथ सामंती मूल्यो के पृष्ठ-पोषक थे, इसलिए व्यक्तिगत रूप से वे रजवाड़ाशाही के पक्षधर रहे थे । परंतु इस दौर से संबद्ध मूल्यों को उन्होंने अपनी आँखों के सामने चकनाचूर होते देखा था, इसलिए नए परिवर्तनों के प्रति शंकालू होते हुए भी वे डोगरी संस्था के प्रगतिशील संपर्कों के कारण इस बदलाव को स्वागत कहते दिख जाते हैं । समय के झंझावात ने उस घोंसले को झकझोर कर तिनको के खंडहर मे बदल डाला, जोकि कभी कवि की आस्थाओं का आश्रय रहा था ।

"कुछ परिवर्तन देखे इसने,
आखिर बदली समय की धारा ।
नीड़ के चिन्ह शेष कहाँ अब,
बिखरे तिनकों का एक सहारा ।"

परिवर्तन की अवश्यंभाविता के प्रति जागरूकता के कारण उन्होंने समय की गत्यात्मकता को अपनी कविता का विषय बनाया । किन्ही स्थितियो में वे पुरातन ढाँचे के समर्थक दिखते हैं । इस दोहरी मानसिकता के कारण उनकी कविता में दो स्वरों की शिनाख्त होती है—

1. एक वह जिसमे परिवर्तन को सराहा गया है ।
2. दूसरा वह जिसमे परिर्वतन के प्रति खीझ प्रकट की गई है ।

गज़ल में प्रायः दूसरा पक्ष अधिक मुखरित हुआ है । इसी से भाग्यवाद के प्रति उनके बढ़ते हुए विश्वास का अन्तः साक्ष्य भी प्राप्त होता है ।

यह आमतौर पर देखा जाता है कि डोगरी गज़ल में इश्क-मुहब्बत के विषय को लेकर शेऽर कहने से प्रायः गुरेज़ किया जाता है, जबकि उर्दू गज़लियात में इन्हें रीढ़ की हड्डी की हैसियत प्राप्त रही है । उर्दू गज़ल की लोकप्रियता का एक मुख्य कारण यह विषय भी रहा है । डोगरी के गज़ल-गो शायरो ने इस विषय को छूने का साहस नहीं किया । इसका मुख्य कारण है डोगरा शायर एवं डोगरी-भाषी लोगों का कट्टरपंथी सनातनधर्मी दृष्टिकोण । इश्क-मुहब्बत को ऐसा विषय माना जाता है जो परंपरागत पारिवारिक मर्यादा और शाइस्तगी का उल्लंघन करता है । इसलिए डोगरी मे इश्किया शायरी के लिए काफी कम स्थान है । मात्र वेदपाल 'दीप' और शंभुनाथ शर्मा ने ही कुछेक गज़लें इस विषय पर कही हैं । इश्क मे नाकामी के भुक्तभोगी वेदपाल 'दीप' ने चंदेक खूबसूरत शेऽरों से इस विषय को खूबसूरती से निबाहा है । इसी तरह जीवन में चारों खाने असफलता का साक्षात्कार करने वाले शंभुनाथ ने भी इस विषय पर कुछेक पुख्ता शेऽर कहे हैं ।

कथन-वक्रता और प्रभाव की दृष्टि से शंभुनाथ की गज़लों में उर्दू गज़ल का-सा आस्वाद मौजूद है जो उन्हें शेष डोगरी शायरों से अलग स्थान प्रदान करता है । इश्क-मुहब्बत से स्पष्टयता जुड़े शेऽरों के साथ ही कहीं-कहीं वे डोगरा मर्यादायो के वशीभूत दुनियावी प्रेम पर हक़ीकी इश्क का मुलम्मा चढ़ा देते हैं । यथा—

"चार दिन दित्ते भला दित्ते बी गिनिऐ चारे,
अन्त तेरा ते कुतै आद नि पाना मिलेआ ।"

उपर्युक्त शेऽर मे जहाँ प्रेयसी से गिला है कि चार दिन के मिलन के उपरांत तेरा अता-पता न मिला वहीं ईश्वर से गिला है कि चार दिन की छोटी-सी ज़िन्दगानी देकर तूने अपना आदि-अंत ढूँढने का अवसर नहीं दिया । और भी कई शेऽरो में वे उस महबूब की ओर सकेत करते है जिसकी एक झलक पाकर उनका कवि हृदय खिल उठता है । यह बात उनकी मानसिक व्यथा बनकर टीस रही है कि महबूब ने दीदार का अवसर ही न दिया । बीती घड़ियो का स्मरण आँखें भर देता है—

"चुप बैठे दे के याद आया, अक्खी बिच अत्थरूं आई गे,
दो बोल गलाए सज्जनें दे, भुल्ले-बिसरे दे खाई गे ।"

एकाकी क्षणों मे कुछ याद आ जाने से सहसा आँखों में आँसू उमड़ आए और प्रेयसी के कहे दो भूले-बिसरे बोल हृदय को कचोटने लगे । एक अन्य शेऽर मे उसका यह कथन बड़ा मायनेखेज़ लगता है कि घर रस-बस रहा है, किसी चीज़ का अभाव नहीं ऐसे में 'हमें ऐसे अतिथि की आवश्यकता नहीं जो मात्र झलक दिखाने आए और जाते-जाते रुला जाए । पाँच शेऽरों की गज़ल मे कवि ने प्रेम भावना का पक्ष निहायत खूबसूरती से प्रस्तुत किया है । परंतु वह संयोग भी क्षण भर का था जो प्रेयसी से मिलन की याद मात्र बनकर रह गया । वे (प्रेयसी) चाँद बनकर हृदयाकाश पर छा गए । उन्हें देखकर तारे शरमा गए । उनके आने से जान मे जान आई । उनका आना जैसे स्वप्न मात्र था । उनका आना तो भ्रम का आरंभ मात्र था । उनकी चोटी साँप लगने लगी । हम फिर आएगे, कह कर वे टाल गए । उनकी हंसी से हृदय में फूल खिल उठे । वे क्रोधित हुए तो वे फूल मुरझा गए । हमारा जीवित रहना उनसे वाबस्ता हो गया । जाते-जाते वे दिल लेते गए, इस भाँति एक अमिट पहचान बना गए । उनका अलौकिक सौंदर्य जीते-जी हमें मार गया । हम कुछ मागने की ज़िद न कर बैठें—इससे पहले वे बहाना बनाकर खिसक लिए । एक अन्य स्थान पर उनकी प्रेम व्यथा मे निजता

का अंश, इस भावोद्वेलन के प्रामाणिक होने का साक्षी है । उनका कथन है—देस और दुनिया अपनी थी । प्रेमिका भी अपनी थी, परंतु भाग्य पराए थे—यही एक कमी थी जिसके कारण अपने होकर भी वे मुझे अपना न सके । 'जिन्द' शब्द का यदि 'प्रेयसी' अर्थ लिया जाए जो दूसरे की हो चुकी है तो कवि की व्यथा प्रकृत दिखाई देती है । परंतु यदि इसका साधारण अर्थ शरीर धरा जाए तो कवि का गिला भाग्य के प्रति है । वह कलम दूसरे के हाथ मे है जिसने किसमत में परायापन लिख दिया है । परंतु यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि 'जिन्द' शब्द लाक्षणिक अर्थ मे प्रेमिका के लिए ही प्रयुक्त हुआ है । एक अन्य शेऽर में यह स्पटतया प्रेयसी को संबोधित है । शेऽर का भावार्थ है, तू नही मिली, पर मै जिधर भी घूमा मुझे तेरे नाम का ताना मिला । तुम्हारा बहुत नाम था और मेरे हृदय में मिलन की उत्कट अभिलाषा थी । इसके सहारे शायद मै तुझे ढूँढ लेता पर मेरी खोज तेरी गली में आने-जाने और उससे गुज़रने तक सीमित रही ।

निजतावादी शैली :

प्रेम की कतिपय दशाओं में दुविधा की स्थिति और डाँवाडोल मनः-स्थिति को कवि ने सूक्ष्मता से अभिव्यंजित किया है । शेऽर किसी कुशल चितेरे द्वारा उकेरे गए चित्रो की भाँति प्रभावशाली बन पड़े हैं । शब्दान्वयन द्वारा चित्रांकन का प्रभाव उत्पन्न करना काव्य-सौष्ठव का अनुपम उदाहरण माना जाता है, जिसमें सूक्ष्म भाव-भगी के स्पष्टीकरण की किंचित् आवश्यकता नहीं रहती ।

"उन्दी मैहफल अस बिन साद्दे जाई ते बड़े, जद नजर मिली,
मन अगड़ा, पैर पिछड़े खिच्चन, ना आई सके ना जाई सके ।"

"उनकी महफिल में हम बिन बुलाए जा पहुँचे । जब नज़र मिली, मन आगे की ओर बढ़ना चाहता था, किंतु पाँव पीछे की ओर खींच रहे थे । न हम लौट सके न महफिल मे जा पाए ।" असमजस और मानसिक कशमकश का ऐसा सुंदर शब्द-चित्र, सूक्ष्म चित्रण का सफल उदाहरण है ।

प्रेम की वियोगावस्था में विरह के उत्ताप से झरने वाले आँसू बहुमूल्य होते है । साधारण आँसू गोद मे गिरकर सूख जाता है, किंतु विरह का आँसू अनमोल मोती का दर्जा पा जाता है । आँसू के इसी महत्त्व को एक अन्य गज़ल के शेऽर मे कवि ने अप्रस्तुत वर्णन द्वारा द्विगुणित कर दिया है। "प्रेम रूपी फूलों का गहरा रंग आँखो मे खुमारी बनकर चढ़ जाता है । हमारी तो गोद इन फूलों के बार-बार झरने के कारण रंग गई है । पुरानी प्रीत का स्मरण मानो दुःखदायी वैरी की स्मृति के समान होता है । आँखों मे पानी भरा रहता है हृदय मे आग सुलगती रहती है । प्रेम का हुलार आते ही एक ओर जहाँ बरसात लग जाती है वही दूसरी ओर विरह की अग्नि धधक उठती है ।

गज़ल को निजतावादी शैली के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण इसमे विषय की दृष्टि से विस्तार नही आ पाया । कवि बारंबार कुछेक गिने-चुने विषयो पर ही अपनी कलम चलाता है । आज का गज़ल-गो शायर दृष्टिकोण की जिस व्यापकता से इस विधा को प्रयुक्त कर रहा है, कवि शभुनाथ अपेक्षाकृत रूप से उतने मुखर नहीं हुए । उनके दृष्टिकोण की परिधि न केवल सकुचित है, बल्कि आवश्यकता से अधिक आत्मपरकता से भी ग्रस्त है ।

ईश्वर, वेदना और भाग्य का त्रिकोण :

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त शभुनाथ की गज़ल के कुछेक मुख्य विषय है—

ईश्वर, वेदना, भाग्य ।

इन तीन विषयो को लेकर कवि ने अपनी प्रत्येक गज़ल मे कुछेक शेऽर लाज़मी तौर पर कहने की कोशिश की है । अपने जीवन को वह तकलीफो की ऐसी प्रतिमा मानता है, जिसका भाग्य ईश्वर ने लिखा है । इसलिए यह तीनों विषय अन्योन्याश्रित हैं । एक शेऽर का भावानुवाद देखे—

"देन तेरी है मेरे कर्मो का दर्पण दाता,
तभी यह दुःख 'ओ ग़म सारे दिए हैं ।"

ईश्वर :- कवि शंभुनाथ आस्थावादी कवि हैं । इश्क के प्रति बात करते हुए कई बार वे सामान्य प्रेम को ईश्वरीय प्रेम में परिवर्तित करते दिखाई देते है । परंतु, अपने मर्यादावादी सस्कारों के कारण इश्क को उन्होंने ऐसे आमियाना ढंग से कभी प्रस्तुत नही किया जो हल्की वाह-वाही की अपेक्षा रखता हो । प्रेम जैसे उदात्त विषय पर वे निहायत कलात्मक ढंग से क़लम चलाते है । नपे-तुले शब्दों मे भाव की सूक्ष्मता को रेखाकित करना उनका मुख्य अभिप्रेत है जिसे सफलता से क्रियान्वित किया गया है ।

मानव प्रेम, ईश्वर प्रेम की मूलभूत कड़ी है । व्यक्तिगत रूप से कवि को प्रेम का अभाव सालता रहा है । इसलिए जहाँ वह ईश्वर का साधारण एव मर्यादानुमोदित गुणगान करता है, वहीं अधिकाश शेऽरो में वह उसके प्रति अपने हृदय के सैकड़ो गिले प्रकट करता है । इसीलिए एक गज़ल के शेऽर में ईश्वर के प्रति उसका उद्‌बोधन है कि कण-कण मे उसका वास है । हर हृदय में उसका प्रकाश है । फिर जगह-जगह उसे ढूँढते फिरने का क्या औचित्य । इसी गज़ल के अन्य शेऽर मे वह ईश्वर के प्रति तनिक रोष का प्रदर्शन करते हुए पूछता है कि मानव के लिए यदि किसमत का लिखा भोगना नियत है तो आदमी उसके दर पर सिर क्यो झुकाए, सिजदा क्यो करे ? वस्तुतः कवि यह मान चुका है कि ईश्वर उसकी हृदयगत भावनाओ के प्रति सहानुभूति-शून्य है । उसके आगे गिड़गिड़ाने का कोई लाभ नहीं । एक पत्थर से न्याय मांगने से क्या होगा । उसका कहना है कि ईश्वर से उसे सिवा कष्टो से कुछ नही मिला । इसलिए वह संवेदनाहीन बुत मात्र है । ईश्वर के प्रति इस मृदु रोष की जड़े कवि के नित्यप्रति के जीवन मे गहरे चली गई हैं और निरंतर उसे दुःख की अनुभूति कराती है । उसकी मान्यता है कि तकलीफदेह छाले स्वतः प्रसूत नहीं है । यह ईश्वर की देन हैं । इसलिए मालिक और बदे के रिश्ते में बधे मानव को ईश्वर से जो कुछ मिले, उसे हंसते हुए स्वीकार कर लेना चाहिए ।

कुछेक शेऽरों में कवि शंभुनाथ ने सीधे ईश्वर को संबोधित किया

है । इन मे से कुछ में वह ईश्वर संबधी सामान्य विचारो का प्रकटन करता है, शेष मे सीधे उत्तम पुरुष में उसे संबोधित करते हुए हृदय के उद्‌गार व्यक्त करता है । उसका कथन है कि ईश्वर नाम के सहारे यह सृष्टि चल रही है । किंतु, मैने जब तेरा नाम जपा मुझे अपनो में बेगाने दिखने लगे । चूंकि भारतीय मनीषा मानती आई है कि ईश्वर का नाम अज्ञान के पर्दे को दूर कर देता है, यह मेरा है, मै इसका हूँ, मोह-माया से ग्रस्त इस दृष्टिकोण को मात्र ज्ञान के सहारे भेदा जा सकता है । जैसे काई और कचरे से भरे तालाब में फिटकरी की बुकनी डालने पर मैल का पर्दा फट जाता है और जल साफ दिखने लगता है, उसी तरह ईश्वर का नाम स्मरण मोह-ममता जनित माया को मिटा देता है । दूसरे अर्थों मे नाम स्मरण से व्यक्ति 'ज्ञान' का अधिकारी होता है । परंतु शंभुनाथ एतद्विषयक एक अलग अनुभूति का वर्णन करते हैं । नाम स्मरण से उन पर अपने-पराए का मिथ्या भेद अधिक स्पष्ट होने लगता है ।

स्वय को सदा एकाकी पाकर वे दूसरो मे अपनत्व की तलाश करते रहे हैं इसलिए वे यह भी कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर नाम की आस लगाए रखता है । इस तरह नाम स्मरण कइयो के लिए सहारा बना हुआ है तो कइयों के लिए बहाना ।

वेदना :- दुःख, कष्ट, वेदना की त्रयी को शभुनाथ अपने भाग्य का अभिन्न अग मानते है । ईश्वर को सबोधित कुछ शेऽरो मे उन्होने परम सत्ता से सीधे बात करने का प्रयास किया है । वे बारबार उससे इस बात का शिकवा करते है कि उसने दुःखो की एक बड़ी पिटारी उन्हे सौंप दी । भाग्य मे एकाध सुख भी लिख दिया होता तो बोझ झेलने मे आसानी हो जाती । "हे प्रभु कभी तुम मुझे मिल जाते तो मैं तुम्हें अपनी दुःख भरी दास्तान सुनाता । मुझे विश्वास है इसे सुनकर तुम स्वय व्यथित हो उठते । मानव के लिए तूने अनत दुःख, मृत्यु, आशा, अभिलाषा और जीवनेच्छाओ का सृजन किया । वह क्या इतना गया गुज़रा था कि उसे इन वेदनाजात वस्तुओं का बोझ उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा । भगवन, मै

तेरे अहसानों को किस तरह भुलाऊँ, तेरी दुनिया ने मुझे मेरी सहन शक्ति से बढ़कर दुःख दिए है ।"

अपने जीवन को वे कटुता और वेदना का सार मानते हैं । उनका मानना है कि यदि इस सार तत्त्व का सबल उनके हाथ में न होता तो जीवन को निभा पाना अति दुष्कर हो जाता । अन्यत्र वे अपने जीवन को ऐसी खडहर दुकान मानते है, जहाँ बासी मनोकामनाओ और अभिलाषाओ का सौदा रखा है । यह दुकान एक सुनसान स्थान पर स्थित है और इसमे पड़ी वस्तुओं का कोई ग्राहक नहीं । उसकी मानसिक पीड़ा का दूसरा कारण है एकाकीपन की भावना और किसी समर्थक के अभाव का अहसास ।

तकलीफों भरी लबी जीवन-यात्रा मे अंततः वे वेदना को दुनिया का अनमोल खज़ाना, कष्टों को ईश्वरीय देन, आँसुओं को अमूल्य मोती मानने लगे है । इसीलिए वे कहते हैं कि एक दर्दभरा दिल लेकर मै बेदर्द क्यो कहलाऊँ । यह अनमोल-अनत खज़ाना जो मेरे हाथ लगा है, इसे क्योकर गंवाऊँ । यह पीड़ाऐं मैंने बहुतेरे कष्ट झेलकर एकत्र की हैं । बूद-बूद करके जमा की हुई यह अतुल राशि मै क्यो गवाऊँ । इसी कारण कवि अपने को कष्टों का सम्राट मानकर ईश्वर से कहता है—तुम्हारे ससार में मैं भिखारी सही, किंतु अपने ससार का मैं स्वामी हूँ । अतएव अपनी इस पदवी को मै लाज नही लगाऊँगा । वेदना के नैरंतर्य में कवि को अब अपार सुख की प्रतीति होने लगी है । कष्टो के प्रति अभ्यस्तता के कारण उसका कथन है कि यदि कभी भूले-भटके चैन के क्षण आए तो ऐसा लगा मानो सुख नही एक बेढव बोझा-सा सिर पर आन टिका है । सुख उधार में मिली वस्तु लगने लगता, क्योंकि सुखानुभूति सदा क्षणिक और अस्थाई हुआ करती थी । इसके विपरीत दुःख सदा जीवन के साथी रहे हैं । जन्म के साथ ही हजारो दुःखो से पाला पड़ा । दो दिन की कहानी मे उम्र भर का विलाप मिला । उनका कथन है कि अपनी जीवन नैया को कभी मल्लाह की आवश्यकता नहीं रही । इस नैया की यात्रा मंझदार से आरंभ हुई थी और अंत तक यह मंझधार में रही ।

गज़ल की विशेषता यह है कि इसमे जितना कुछ प्रत्यक्षतया कहा जाता है कवि का अभिप्रेत उससे कही अधिक होता है । उसका मन्तव्य शब्दो की सीमा लाँघकर, एक वृहद आशय की स्थापना करता है । यद्यपि ऊपर उल्लिखित शेऽर के भावार्थ मे मात्र ऐसी किश्ती का वर्णन हुआ है जो सदा मझधार मे रही, तथापि आशय की परिसीमा में कवि ने न केवल अपने जीवन मे कष्टों की अत्यता एव सुख-दुःख के साथी के अभाव की बात भी कही है, बल्कि आजन्म दुःखों की धारा में बहने और कहीं किनारा न दिखने की व्यथा को भी खूबसूरती से इसमे समाहित कर डाला है । चूकि इस किश्ती का खेवनहारा कोई नही है, इसलिए अपने अकेलेपन की पीड़ा को भी कवि ने सफलता से व्यजित किया है । कष्टो की विकराल बाढ मे कवि तकलीफो की फूत्कारती लहरों मे अपने को अकेले बहते हुए पाता है । उसे ज्ञात है कि संसार सागर में कोई किसी की सहायता के लिए नही कूदता, तो भी उसकी इच्छा है कि—काश कि कोई किनारे से झूठी धैर्य बधाती आवाज़ ही लगा देता । सहानुभूति के एक शब्द के लिए तड़प रहे कवि का कहना है कि उम्र भर खूब ज़हर पिया, अनेक कसाले चुप-चाप सहे, छाती के भीतर एक अलाव-सा पलता रहा । परतु पराजय के स्वीकृति सूचक निःश्वास नही छोड़े, आहे नही भरी ताकि मेरे हृदय की अग्नि से ससार न धधक उठे । किए-अनकिए अपराधो ने बैर निभाया । अनेक ऋतुए बदली, किंतु बलिहारी इस नियति के कि यह नहीं बदली ।

दुःखों की सीमा बढ़ जाने पर वह सीधे ईश्वर से कहता है—"हे प्रभु, तेरी दुनिया में जीने के लिए दिल बड़ा होना चाहिए, उसके बाद चाहे सारे जहान के कष्ट मिल जाएं । व्यथा की इस निरंतर यात्रा मे साधारण व्यक्ति निश्चय ही डाँवाडोल हो जाएगा । फिर भी न जाने ऐसा क्या था कि अपना लहू पी-पी कर जीते रहे । सुख-दुःख के बनजारे बने हम दुःख पाने के लिए सुख बेचते रहे ।"

निजी जीवन में कष्टो, तकलीफो और असफलताओ के निरंतर

दबाब ने कवि हृदय को गज़ल के माध्यम से मुखर होने के लिए प्रेरित किया है । पारिवारिक जीवन मे पत्नी के लंबे दिमागी विकार ने उन्हें पीड़ा का अनत स्रोत प्रदान किया था । इसके अतिरिक्त परिचित लोगों को जातिवाद और अन्य हथकडों से जिस ऊँचाई पर पहुँचते देखा था और स्वयं योग्य होने पर भी मर्यादाओं का साथ न छोड़ने के कारण जो-जो असफलताएं उन्होंने झेली थी वे उनके हृदय का शूल बन गईं ।

अतीत का स्मरण करते हुए वे कहते है कि तूफान के उपरात घोसले का एक मात्र निःशेष तिनका इस बात का द्योतक है कि कभी हम भी सुख और सौभाग्य के स्वामी थे । खडहर भी अतीत की रुणझुण और जीवंतता का अद्भुत इतिहास कहते है । अब तो दशा यह है कि कभी हमने पलभर विश्राम करने के लिए एक तिनके का आश्रय चाहा तो देखते ही देखते आसमान कुपित हो उठा । झंझावात और वज्रपात की परवाह किए बिना हमने पेड़ की चोटी पर अपना घोसला बना डाला । इस भाववाले शेऽर मे कवि को गिला है कि जब कभी उसने कही सुख की छवि ढूँढी, ईश्वरीय नियति तूफान बनकर झूलने लगी । किंतु हम बेधड़क अपनी आशाओ के घोसले का निर्माण करते रहे—

"न पूछ हकीकतें आँधी-ओ-तूफानो की,
बस इन के सहारे मेरी उम्मीद पलती है ।"

इससे स्पष्ट है कि कवि कठिनाइयो को ही जीवन मानता है । सुख और दुःख मे से कुछ न होने से तो बेहतर है आदमी के पास इन दोनो में से कोई एक तो हो, क्योकि बेलाग व्यक्ति जिसे किसी से कोई मोह-ममता न हो, और न ही जिसकी कोई मज़िल हो—उसका जीवन लोगों के लिए व्यग्य का घर बन जाता है । इसलिए कवि पीडा के दिशासूचक को निरंतर अपने अग-संग रखना चाहता है ताकि उसका जीवन दिशा-भ्रमित न दिखे ।

अपने जीवन के तूफानो का प्रत्यक्षदर्शी स्वयं कवि है । एक शेऽर मे उसका कहना है—अपनी आँखो के समक्ष मेरा घोसला धधक उठा । देखते ही देखते प्रत्येक तिनका सुलग उठा । इस आग को

जो बुझाने आए थे हंसी-हंसी मे उन्होंने जलती मे घी उंडेल दिया ।"

गज़लों मे निज व्यथा को व्यक्त करने के लिए उन्होने 'कड़वे घूँट', 'लहू के घूँट', 'जहर के घूँट,', 'फूत्कारते तूफान', 'जीवन की थकान', 'छाले', 'पतझड़', 'दुःख-कसाले', 'वेदना', 'कलेजे की धुखन' आदि पदो का बारंबार प्रयोग करके अपनी उदासी, निराशा और हताशा को काव्यात्मक स्वरूप मे प्रकट किया है । सपाट-बयानी से बचने के लिए कई स्थानो पर शब्द-चित्र गढने का सफल प्रयास भी किया गया है ।

भाग्य :- शभुनाथ ने डोगरा समाज से सास्कृतिक विरासत के रूप मे जो परंपराएं और विश्वास प्राप्त किए हैं, उनमें नियतिवाद और भाग्य विषयक धारणाओ का प्रबल अंश भी है । भाग्यवाद उस अतार्किक दर्शन का ऐहिक स्वरूप है, जिसमे क्रिया, घटना, कार्य आदि का कारण किसी तर्क-संगतता की कसौटी पर नही, बल्कि 'पूर्व-निर्धारिति' पर अवस्थित माना जाता है । पौर्वात्य जन-मानस की निष्ठा है कि पूर्व जन्म के कर्मों का फल हम इस जन्म मे भुगतते हैं । परंतु शभुनाथ कर्मो को अपने जीवन का लेखा-जोखा न मानकर इसे ईश्वर द्वारा लिखित एवं पूर्व निर्धारित मानते हैं—"मेरे कर्मों का दर्पण, हे दाता तेरी ही देन है । इसलिए तूने संसार के तमाम गम और दुःख बुहार कर मेरे भाग्य मे डाल दिए ।"

आत्म-संधान की अनन्य कृति 'योग वाशिष्ट' मे पौरुष और दैव के समुच्च्य से सफलता का होना सभव माना गया है, अर्थात् निर्धारिति के साथ-साथ व्यक्ति के सही प्रयत्न (कर्म) भी उसे कामना की सिद्धि तक ले जाते हैं । किंतु लोक-मानस कार्य-कारण का न्याय न मान कर प्रत्येक घटना को भाग्य का विधान मानकर चलता है । पहाड़ से लेकर ज़र्रे तक, मानव से लेकर चींटी तक, ये सब विधि की रचना माने जाते है । यही कारण है कि लोक-वाङ्मय और मानवीय अभिव्यक्ति के अन्य साधनों मे भी भाग्यवादी स्वर प्रखरता से मुखरित होते सुनाई पड़ते है । भाग्य की प्रभु-शक्ति के समक्ष मनुष्य अपने को नगण्य मानता है । सृष्टि का सारा विधान

कठपुतली के खेल-सा है । इस खेल का नियता तमाम सूत्र थामे अदृश्य मे विराजमान है । होनी, तकदीर, भाग्य, किसमत, सयोग, विधि, विधात्री, विधाता आदि शब्द भाग्यवादी दर्शन का अभिन्न अंग हैं । डोगरी भाषा के लोकगीतों, लोककथाओ तथा लोक-विश्वासो में भाग्य को एक समर्थ शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है । इन में भाग्य को ईश्वर की इच्छा माना जाता है ।

डोगरा समाज की जिस पीढ़ी से शभुनाथ का सबध है, उसमे परपरागत जीवन मूल्यो के प्रति एक प्रकृत मोह दिखाई देता है । भाग्यवाद की पूर्व-पृष्ठभूमि पहले से मौजूद थी, किंतु अगस्त 1947 ई. में भारत की स्वतत्रता, देश का विभाजन तथा उसके बाद के तेज़ परिवर्तनशील घटनाक्रम ने कवि को भाग्य के प्रति और अधिक आस्थावान बना डाला । रजवाड़ाशाही मे जीवन के कई मोड़ो पर उपेक्षा झेल चुके शभुनाथ स्वाभाविक रूप से दुःखी थे, परंतु स्वाधीनता भी उनके जीवन के लिए कोई सुसमाचार लेकर नही आई । अलबत्ता, जीवन की कठिनाइयां ही बढ़ती दिखी । इसलिए, भाग्य पर उनकी निष्ठा दृढ़ से दृढ़तर होती चली गई । आस्थावादी और भाग्यवादी दृष्टिकोण के कारण हृदय की टीस को व्यक्त करने के लिए ही शंभुनाथ ने गज़ल को माध्यम के रूप मे चुना और स्वानुभूत को शेऽरो के माध्यम से मुखर किया । भाग्यवाद के प्रति उनकी अटूट आस्था की जड़े उनके इस अहसास की भूमि में कही गहरे पैठ रही है कि उनका जीवन असफलता, व्यथा और दुःख की लंबी गाथा है । इस गाथा को तकदीर के अनुसार घटित होना ही है । ईश्वर ने जब भाग्य लिखा तब उसने जीवन मे दुःखो के अनुपात का ध्यान न रखा । इसीलिए ईश्वर से गिला करते हुए वह कहता है—प्रभु, भाग्य लिखना तुम्हारा दिन-रात का धंधा है । हम भी तेरे बदे हैं । हमारी बारी ज़रा सोच-समझ कर भाग्य को गढ़ते-तराश्ते तो कितना अच्छा होता । जिस तकदीर के बल पर तूने मुझे जिम्मेवारियो के पहाड़ उठाकर जीवन के कठिन रास्ते पर ठेल दिया, वैसी तकदीर के बलबूते पर यदि कोई देवता भी धरती पर मनुष्य बनकर आता तो वह भी पीड़ा से कराह उठता ।

शंभुनाथ को विश्वास है कि जितने कष्ट बाध्यतः उन्होनें सहे हैं, वे मानव की सहन शक्ति से परे की बात है । उनका कथन है कि जब ईश्वर द्वारा भाग्य का वितरण किया जा रहा था, तब वे मीलो दूर थे । जो पास थे उन्होने तमाम खुशियां पा ली । जो दूर थे उनके हिस्से में आहें और क्रंदन आया । भाग्य सदा हमसे वैर कमाता रहा । ता-उम्र खींचा-तानी की एकसारता जीवन मे व्याप्त रही । तकदीर के आगे किसी का वश नही चलता । इस बात को कवि ने इस तरह रखा है—"भाग्य मदरसे की तख्ती नही है कि इसे धो-पोंछ कर नई इबारत लिखी जा सके । न ही विधाता तहसील कार्यालय का मुन्शी है कि उसकी मिन्नत-समाजत करके कुछ रियासत ही मांगी जाए ।" नियति के प्रति अपना अटूट विश्वास व्यक्त करते हुए कहते हैं कि लाख जतन करने पर भी बात बनती नही है । जब बननी हो तब स्वतः अनेक कारण एकत्र हो जाते हैं । उन्हे यह अहसास है कि कुछ पास होने पर ही नसीबो का महल ऊँचा उठता है । यदि भाग्य लिपि ही रिक्त है तो व्यर्थ प्रयत्नों की रेतीली दीवार चिनने से क्या लाभ । जनमानस चूकि भाग्य को अटल मानता है, इसलिए वही होगा तो नियत है । उस स्थिति में भक्ति, ज्ञान अथवा पूजा-अर्चना की प्रासंगिकता क्या है ?

गिले-शिकवे के बाद कवि के स्वर मे कुछ-कुछ अनास्था और उद्दडता का मिश्रण भी होने लगता है । फिर इस निश्चय के साथ कि ललाट की लिपि के आगे कोई बस नहीं चलेगा, अपने-आप को समझाता है—हे मन, निराश न हो । यह ज़िन्दगी ऐसे ही चलती रहेगी । होनी बिना हुए टलेगी नही ।

व्यक्तिनिष्ठता का प्रतिफलन :

अनुकूल भाग्य न होने की कड़वाहट और तज्जनित शिकायतो के वशीभूत गज़लो में कही-कहीं भाव के दुहराव का दोष स्पष्ट दीखने लगता है । उनकी प्रायः प्रत्येक गज़ल में ईश्वर के प्रति गिले को अथवा भाग्य मे बंधी कटुता को आधार बना कर कुछ शेऽर

लाज़मी तौर पर लिखे गए है । इस दुहराव से यह बात स्पष्टतया समझी जा सकती है कि भोक्ता के स्तर पर इन अनुभूतियों ने कवि चिंतन पर अमिट छाप छोडी है । गज़लों मे अभिव्यक्त व्यक्ति-निष्ठता स्वानुभूत का प्रतिफलन मात्र है ।

डोगरी में गज़ल शैली के समारंभ से ही इस मे स्थानीय सस्कृति की खुश्बुए भरने का प्रयत्न किया जाता रहा है । यही कारण है कि इसमे 'शमअ-परवाना', 'जुल्फ और बुलबुल' की नवाबी परिकल्पना को स्थान नही मिला । इसमें प्रायः शायर की कड़वी अनुभूतियां, व्यक्तिगत एवं समाजगत घुटन ही मुख्यता रेखांकित हुई है । इतना ही नही, 'जाम-साकी', 'मीना और शराब ' के नाम पर वाह्-वाह लुटाने वाले हल्की रुचि के श्रोताओ के लिए भी डोगरी गज़ल मे रिवायती उर्दू गज़ल के नजारे नदारद है । आधुनिक डोगरी गज़ल ने अपनी अलग साख्त कायम की है । भाव-पक्ष को निजी परिवेश और आवश्यकता के अनुरूप गढ़ा है ।

इस अलग पहचान के लिए शभुनाथ तथा अन्य अग्रणी गज़ल-गो शायरों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । उन्होने आरभ से ही गज़ल को मात्र एक शैली के रूप मे अपनाया और विचारधारा को परपरागत भारतीय धरातल से सपृक्त किए रखा । दुःखवाद, भाग्यवाद और ईश्वर आदि को गज़ल का विषय बनाना शभुनाथ द्वारा इस दिशा में किए गए सद्प्रयासो की पुख्ता बानगी प्रस्तुत करता है ।

कविता के प्रमुख स्वर

विचार, कल्पना और अनुभूति, इन तीन तत्त्वो के सयोग से कवि की मानसिक परिधि और वैचारिक परिसीमा का द्योतन होता है । अपने भाव-ससार को वाणी प्रदान करते हुए कवि चौगिर्द के वातावरण से प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण करता है । सामाजिक दायित्व की भावना उसकी साहित्यिक दृष्टि के विकास मे सहायक होती है । अतएव साहित्य संबधी उसकी समझ तत्कालीन सामाजिक वातावरण और आर्थिक परिस्थितियो से प्रेरणा पाती है । दूसरे शब्दो मे सृजनात्मक कृति मूल रूप से ऐसा मनस् प्रतिबिब है जो लेखनी द्वारा शब्दाकार प्राप्त करता है ।

शंभुनाथ निष्ठावान मानसिकता के कवि है । यह निष्ठा मानवतावाद के मूलभूत सिद्धातो से उत्प्रेरित है । समय-समय पर उनका वास्ता जैसी स्थितियों से पड़ता रहा हैं, उन्हे मानवता, राष्ट्रीय हित अथवा सौदर्यवादी दृष्टि के अनुरूप वे कविता में ढालते रहे है । कवि का प्रयास रहा है कि प्रत्येक ऐसे विचार बिदु को सहेज लिया जाए जो उसकी मानसिकता एव वैचारिकता को प्रभावित करता है ।

नई साहित्यिक प्रवृत्तियो को जानने-अपनाने के क्षेत्र मे वे उदारतावादी रहे है । साथी कवि मित्रो को जिस साहित्यिक डगर की ओर बढते देखा, उन्होने भरसक प्रयास किया कि वे भी उसी धारा मे अपनी कलम माज सके । इसी गुणग्राही वृत्ति के कारण उनके कविता रूपी मधु-कोष मे विभिन्न फूलो का महकीला मधु एकत्र हुआ दिखता है । दूसरे लोगों से दिशा प्रभाव लेकर भी वे अपनी पहचान के प्रति सचेत है ।

सीधी सादी कविता के रूप मे प्रस्फुटित काव्यानुभूति उत्तरोत्तर भाव-सौदर्य से सपन्न होती गई है । समय, परिस्थिति एवं विचार

की भिन्नता के कारण उनकी कविता मे विभिन्न भाव-तरंगे सगुफित हुई दिखलाई पड़ती हैं । अंततः यह काव्यानुभूति विचार गांभीर्य की परिणति पर पहुँचती है । उनकी कविता का समग्र एवं समयक मूल्यांकन करने पर कुछेक स्वरो की निशानदेही सहज ही हो जाती हैं । यथा—

1. इतिवृत्तात्मकता
2. उपदेशात्मकता
3. स्वच्छंदतावाद
4. मानवतावाद
5. प्रगतिवाद
6. राष्ट्रीय भावना

कुछेक कविताओ मे एकाधिक स्वरो को एक-साथ सुना जा सकता है, जबकि इतिवृत्त-आधारित कविताओ मे बहुधा एक ही स्वर की अनुगूंज सुनाई पड़ती है । यह स्वर एक ओर यहाँ उनकी कविता के प्रवृत्यात्मक अध्ययन में सहायक होते हैं, वहीं उनकी कविता यात्रा के विकासात्मक सोपानों के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

इतिवृत्तात्मकता :

स्वतंत्रता पूर्व की डोगरी कविता में वर्णनात्मकता एक प्रमुख शैली के रूप में प्रचलित रही है । डोगरी कविता का उद्गम लोकगीतो की धारा से उद्भूत दिखाई पड़ता है—इसलिए आरंभिक डोगरी कविता पर लौकिक सस्कृति का प्रभाव बड़ा स्पष्ट होकर उभरा है । शभुनाथ के चचेरे भाई पं. हरदत्त शर्मा जो कि डोगरी कविता में अग्रदूत की हैसियत रखते हैं, मुख्यतः धार्मिक विषयों पर कविताएं लिखा करते थे और उनकी शैली वर्णनात्मक थी । चूंकि शंभुनाथ काव्य-सृजन की ओर तब प्रेरित हुए जब हरदत्त डोगरी में कविता लिखना छोड़ चुके थे, इसलिए यह तो नहीं माना जा सकता कि उन पर हरदत्त का प्रत्यक्ष प्रभाव था, किंतु वर्ण्य-विषय के रूप में वस्तु स्थिति और शैली के रूप में वर्णनात्मकता का सलीका उन्होंने

संभवतया उन्हीं से पाया था । वस्तुतः डोगरी कविता के शुरुआती दौर मे मात्र कथा अथवा स्थिति के यथातथ्य वर्णन को विशेष महत्ता प्राप्त थी । कभी-कभार स्थितिया ऐसी हास्यास्पद होतीं कि उनसे स्वतः व्यग्य फूट पड़ता । दीनूभाई पत की 'शैहुर पैहूलो गे' में निहित तीखा व्यग्य और विनोद उस दौर मे इस शैली की सफलता का मुंह बोलता प्रमाण है ।

कथात्मक कविता में विस्तार अपेक्षित होता है, इसलिए ऐसी कविता के लिए वर्णनात्मक अथवा वस्तु परिगणन शैली सर्वाधिक उपयुक्त शैली सिद्ध होती है । प्रकृति के कार्य-व्यापार के प्रति जन-मानस मे प्रकृत औत्सुक्य भाव रहता है । कवि चूंकि जनमानस की भावनाओ को ही शाब्दिक पहरावे मे प्रस्तुत करता है, इसलिए स्वाभाविक है कि शुरुआती दौर की डोगरी कविता विषय और शैली की दृष्टि से उस समय के जीवन की तरह ही सादा है । अपने कवि मित्र अलमस्त की भाँति शंभुनाथ ने भी प्रकृति का यथातथ्य वर्णन करके परंपरा का सार्थक वहन किया है । देखे—

मट्ठी-मट्ठी चाल्ला चलै दी ऐ बदली पांदी चफैरे घरमोल ।
रली-मिली पक्खरू फुम्मनियां पादे बोलन हेरै-फेरै बोल ।

●●●

काले डिग्गलें कालिएं धारें, न्हेर पाए दा रारें-पारे ।
रुक्खे पेई गेआ रोल ।

●●●

ब'र मोइए ब'र, मेरै बी ब'री जा, भाग जले दा इक बारी तरी जा।
कैंहू पानी परचोल ।

—शंभुनाथ

रिमझिम-रिमझिम बूंदें लाई,
सड़े-सुक्के दे होई गे सैल्ले-
कचूच सैल्लिया धारां ।
खुशिए दें बिच बूहुटे नचदे,
पक्खरू गान मल्हारां

—अलमस्त

'बदली' को विषय बनाकर शभुनाथ ने दो कविताए लिखी है । आकाश मे बदली घिर आने पर विभिन्न प्राणियो पर क्या-क्या प्रतिक्रिया होती है, बदली विषयक प्रथम कविता मे इसका विशद वर्णन किया गया है । पछी झूमने लगते है । पपीहा पी-पी कहते हुए अपने परो से आकाश को तोलने लगता है । प्रेम के रथ आकाश मे आगे बढ़ते हुए एक दूसरे से गुत्थम-गुत्था होने लगते है । काले बादलो और काली पर्वत शृखलाओ पर हर कही अधियारा घिरा दिखाई देता है । इसे देखकर पथिक अपनी यात्रा भग करके सुरक्षित ठिकाने ढूँढने लगते हैं । प्रेमी लोग प्रेम की सुखद नींद में सोने लगते हैं । सब को प्रभावित करने वाली इस बदली से कवि मन अछूता नही रहना चाहता । इसलिए सीधे उसे सबोधित करके कह उठता है कि—मुई एक बार मुझ पर बरस जा जिससे यह भस्मीभूत भाग्य तर-बतर हो जाए । तेरे गर्जन से मन डोल रहा है । स्मृति मे विस्मृत दुःख लौटने लगे हैं, उन्हें बीनते-बीनते मै थक-हार गया हूँ । यदि तू न बरसी तो मेरे हृदय की प्रवंचनाएं कैसे दूर होगी । मेरे कष्ट कौन हरेगा ।

बदली चूकि मानसिक उद्वेलनो की प्रेरक और भावोद्दीपक है, इसलिए कवि के कष्ट एवं प्रवचनाएं प्रेम के क्षेत्र से संबद्ध हैं, यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है ।

विवेच्य 'बदली' (प्रथम) नामक कविता का भाव-साम्य अलमस्त के प्रभाव को दर्शाता है, परंतु बाद मे लिखित 'बदली' (द्वितीय) में शंभुनाथ ने मौलिक अवधारणा की प्रस्तुति की है । इसमें 'बदली' कवि-मानस पर एक प्रश्न चिन्ह बनकर अंकित हुई दिखाई पड़ती है । मानवीकरण की पाश्चात्य पद्धति के अनुरूप उसे आकाश में लेटी हुई एक सुंदरी के रूप मे चित्रत किया गया है—जिसने अपने केश बिखेर रखे हैं । उसके अलौकिक सौदर्य के समक्ष चन्द्रमा शरम का मारा बाहर नहीं निकल रहा और तारे भी मुह छिपाए बैठे हैं । यदि कवि पूर्वोक्त वर्णन शैली में इसी भाव को व्यजित करता तो निश्चय ही यह वस्तु परिगणन अथवा वस्तु वर्णन शैली के कारण बिलकुल आम-सी कविता बन जाती । इसलिए इस कविता में न

केवल उन की प्रामाणिक काव्य-दृष्टि झलकती है, बल्कि भाव और शिल्प की दृष्टि से भी यह एक उपलब्धि के समान है ।

आकाश में छाई बदली को स्त्री रूप मे प्रकल्पित करके उसके उन्मुक्त विहार के प्रति विभिन्न पदो में उसके सात रूपों का चित्रण किया गया है । यथा—

1. यह कोई *अल्हड़ ग्राम्य* बाला है *अथवा* शहरी छबीली है जो संभवतया अपने तमाम अलंकरण अथवा प्रकृत उपादान किसी को दान मे देकर यहाँ चली आई है । वह अपनी मूल्यवान संपदा लुटा कर क्रोध में लाल-पीली होकर चहुं दिशाओ को धूल धूसरित कर रही है ।
2. अथवा यह कोई परित्यक्त नव-व्याहता है जो अपनी ससुराल और पीहर त्याग कर यहाँ चली आई है । इसे इसके पति ने बुलाया तक नही । यह बेचारी अपनी मर्यादा में बंधी रहकर कोई आश्रय नहीं खोज पाई—इसलिए यह आकाश के अधबीच बिना किसी सहारे के लटक रही है ।
3. अथवा यह ऐसी विरहिणी है जिसका कन्त लौट आने की आस बंधाकर कही गया हुआ है । प्रतीक्षा की घड़ियां व्यतीत करने के लिए औंसियां डालते न जाने कितने वर्ष बिता चुकी है ।
4. अन्यथा यह ऐसी अबला है जिसका सुहाग लुट चुका है । फूलों से सजा रहने वाला सुहाग चिन्ह 'सालू' अब वैधव्य की मैली चादर बन चुका है । आज तमाम संबंधी उसे सहारा देने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं ।
5. अथवा यह ऐसी बहिन है जो अपने भाई को राखी बाँधने या भैया दूज का टीका लगाने के लिए अपने छींकि से मिष्ठान्न ढूंढ रही है । चाँद की थाली में वह तमाम तारो को शक्करपारों के समान समोए हुए है ।
6. अथवा यह ऐसी विमाता है जो कोप भवन में एक नया छल खेलने की ताक में लस्त पड़ी हुई है । सौत पुत्रों के कारण मन मे उठती हुई दुविधा के वश वह अपने हठ को पूरा करना चाहती है । न जाने इस कैकेयी ने अब

किस राम को बनवास दिलवाने की ठान रखी है ।

7. यह अल्हड़ सुदरी आकाश मे चुपचाप बिना हिले-डुले बैठ नही पाती और बार-बार करवट बदलती है, जिससे कई मासूम सितारे इसके नीचे कुचले जाते हैं । इस मदमस्त नवयौवना के सामने वे बोल तक नही पाते ।
8. यह तो आग और पानी के सयोग से उत्पन्न ऐसा बुत है जिसने आकाश का सहारा ले रखा है । इतनी बड़ी धरा पर इसे कोई सहारा नहीं मिला । इस उपेक्षा की प्रतिक्रिया स्वरूप सब को नीचा दिखलाने के लिए आकाश में जा चढ़ी है ।

अंतिम पद में कवि कल्पना-लोक से पुनः धरती पर लौट आता है और कहता है कि मैं तो भ्रमित हो गया था, परंतु वह नहीं भूली कि वह महज़ एक बदली है । गर्मी की यह मदमस्त बैरिन एक ही छलांग में गगन में ललकार बनकर खड़ी हो गई है । अब यह धरती रूपी दुल्हिन के बारे भरेगी ।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि शैली मे तनिक बदलाव से ही इतिवृत्तात्मक सपाट-बयानी से न केवल बचा जा सकता है, प्रत्युत् काव्य-सौष्ठव को भी उद्दीप्त करना सभव है । 'बदली' पर लिखी दो कविताओं को यदि एक ही सिक्के के दो पहलू मानें तो प्रथम जहाँ सपाट-बयानी से ग्रस्त दिखाई देता है, वही द्वितीय पहलू में गहराई और सौंदर्य के आयाम उसे अलग शिनाख्त प्रदान करते हैं ।

प्रकृति वर्णन के अतिरिक्त वर्णनात्मक शैली का प्रयोग कथात्मक एवं घटनात्मक कविताओ मे भी किया गया है । इतिवृत्त मूलक कविता मे कवि कथानक प्रस्तुत करने से पूर्व एक सुचारु भाव-भूमि बाँधता है ताकि कथ्य को एक तर्क-सगत आधार पर खड़ा किया जा सके । प्रारंभ न केवल सहज और रोचक प्रतीत होना चाहिए, प्रत्युत् इसमे पाठक अथवा श्रोता मे औत्सुक्य जागृत करने की क्षमता भी होनी चाहिए । कथ्यात्मक कविता मे अपनी लेखनी द्वारा श्रेष्ठ शब्द-चित्र गढ़ने मे शंभुनाथ सिद्ध-हस्त है । 'विधवा' में ढलती सांझ का चित्रण, 'पत्तन' मे गांव के प्रशांत वातावरण और 'फूला दा कुर्ता"

मे गाँववासी नसीबू बरवाले का अपनी बेटी को निर्देश देना आदि निहायत सरल एव सहज-ग्राह्य चित्रण हैं । उनकी इतिवृत्त सृजन की क्षमता आगे चलकर महाकाव्य (रामायण) की रचना में परिपाक को प्राप्त हुई है ।

उपदेशात्मकता :

कवियो की जिस पीढी से शभुनाथ का सबंध है, उसके समक्ष कविता यथार्थ चित्रण द्वारा मात्र जीवन की तल्खी उभारने की विधा नहीं है । पुरानी पीढ़ी के कवि इसे समाज को संदेश देने का माध्यम मानते रहे है । उनकी मान्यता रही है कि कविता द्वारा समाज को नई दिशा दी जा सकती है । अथवा इस दिशा में उन्मेषकारी प्रयास तो होना ही चाहिए । इसलिए बुराइयों पर चोट करने के लिए और देशवासियो को नैतिकता का पाठ पढ़ाने के लिए पुरानी पीढ़ी के कवि विशेष रूप से सजग रहे हैं । इस दायित्व का निर्वाह करते हुए शभुनाथ अपनी कविताओ द्वारा एक उपदेश पाठको को अवश्य देते हैं ।

उन्होंने आदमी को क्रियाशील रहने का, समय की आवाज़ को पहचानने का, देश प्रेम का और मानवता की सेवा का संदेश दिया है । 'बगदी गगा' मे वे पिछडी हुई श्रमजीवी जातियो को प्रेरणा देते है कि आज़ादी के बाद उन्नति की गंगा सब के लिए प्रवाहित होने लगी है । हे श्रमिक ! तू अपनी मेहनत से पेट भरता है, इसलिए अब मानसिक गुलामी को भी उतार फेंक । तू औरो के समान है, इसलिए अपना अधिकार त्यागना उचित नहीं । उठ और काम कर । बहती गगा मे नहा ले । समय ने करवट बदली है । तेरे ओठो पर मुस्कान खिली है । अब बे-झिझक होकर हंस ले । तू कमर कस कर दौड़ में शामिल हो जा ।

कवि की हार्दिक इच्छा है कि दलित जातियां स्वतंत्रता के फल की भागीदार बनें, देश एवं मानवता की उन्नति में बराबर की शरीक हो । इस प्रयोजन से वह कविता को उनके प्रोत्साहन और प्रेरणा का स्रोत बना देता है । "बिगड़ी दी चाल" शीर्षक कविता में

देशवासियों को स्मरण दिलाता है कि हमें आज़ादी के निमित्त दी गई लाखो कुरबानियों का ऋण उतारना है । आओ प्रण करें कि द्वैत भाव या भेदभाव के झगड़े मिटाकर स्वतत्रता की रक्षा के लिए मर मिटेंगे ।

"देशवासियो, मन से संशय मिटाकर शत्रु को खदेड़ दो । यदि कोई अंगुली उठाए तो उसकी बाजू काट डालो । तभी बात बनेगी । जब शत्रु ही न रहेगा तो मानसिक भय भी जाता रहेगा । समय को पहचान कर कुछ दिन देश के निमित्त अर्पित करो ।"

'कार कर' नामक कविता तो एक लंबा उपदेश ही है, जिसमें तमाम लोगो से मेहनत करने के लिए कहा गया है । शंभुनाथ के समक्ष मेहनत देशभक्ति का पर्याय है । 'आराम है हराम" प. नेहरु के इस इतिहास प्रसिद्ध संदेश को इस कविता में विस्तार प्रदान किया गया है । मेहनत से हम देश का भाग्य संवारते हैं । देश का भाग्य, ही हमारा भाग्य है । विदेशी दासता से मुक्त होकर भी हम आलस्य और बेकारी के गुलाम हैं—यह बहुत बड़ी विडबना है । इन बेड़ियों को तोड़ने पर स्वतत्रता का सही रूप उद्घाटित होगा ।

"मेहनत के बदले उजरत पाकर न केवल तेरा कल्याण होगा, बल्कि देश भी फले और फूलेगा, क्योंकि तेरी गरीबी से देश गरीब होगा और अमीरी से अमीर । तू बदलेगा तो देश बदलेगा ।" शभुनाथ मेहनत को भाग्य की कुंजी स्वीकार करते हुए देशवासियो से इसकी महिमा का बखान करते है ।

महात्मा गाँधी के संदेश—"शत्रु से भी प्यार करो" के विपरीत शंभुनाथ हिंसा को हिसा से मिटाने में विश्वास रखते हैं । उनका मानना है कि अहिसावाद का उदार दर्शन वस्तुतः बौद्धिक और मानसिक रूप से उन्नत शत्रु के संदर्भ मे तो लागू हो सकता है, किंतु दरिंदगी की सीमा लाँघ चुके शत्रु के समक्ष अहिंसा मात्र कायरता है । इसलिए ईंट का उत्तर पत्थर से देना सर्वथा उपयुक्त है । सीमांत क्षेत्र होने के कारण और इस पर शत्रु की लोलुप दृष्टि के कारण

राज्य के लोगो ने उसके कुटिल मनोरथ का दश एकाधिक बार सहा है । 1948 ई. मे कबायली लुटेरो द्वारा हत्याएं और लूटपाट, 1965 ई. तथा 1971 ई. के भारत-पाक युद्ध, 1962 ई. मे भारत-चीन युद्ध की तबाही को डोगरा लोगों ने भी पूरे देश के साथ झेला है । भारत की लड़ाका सैन्य जातियो मे से एक होने के कारण इस मे शत्रु से प्रेम करने का सिद्धांत मानसिक स्वीकृति नहीं पा सका । युद्ध और तज्जनित विभीषिका का शिष्टाचार अलग होता है । इसीलिए वे एक योद्धा की भाँति अपने पर हाथ उठाने वाली बाजू को उखाड फेकने की ललकार देते है । मातृ-भूमि की स्वतत्रता उन्हें हर हालत मे प्रिय है ।

परंतु, वे जानते हैं कि मानव सस्कृति की चरम उपलब्धि शाति है । शात वातावरण मे ही मानवीय प्रतिभा, सृजन, कल्पना और विचार अपने शिखर पर पहुँचते हैं । प्रेम और सद्‌भाव के पेड़ का अमृत फल शाति है । अतएव मानवीय विकास का ध्येय इसी अमृत फल के उत्पादन से संबद्ध होना चाहिए, न कि विनाश से । मानवीय अस्तित्व अविवेक की अंधी खाई मे डूब नहीं जाना चाहिए ।

विकास के नाम पर मानव ने मृत्यु के जो अनेकानेक विनाशकारी साधन तैयार किए हैं कवि उन्हें मिटाने का और मानव मात्र के कल्याण का सदेश देता है । उसका कथन है कि जब विश्व मानव निर्भय होकर स्वयं जिएगा और दूसरो को जीने देगा, सुख-दुःख में परस्पर साझीदार होगा, स्वर से स्वर मिलाकर जीना सीखेगा, किसी के आचार-विचार को लताडेगा नही, तभी सही दिशा मे विकास हो पाएगा ।

उपदेशमूलक कविताओं द्वारा कवि जिस सदेश को दुनिया के सामने अभिव्यक्ति प्रदान करना चाहता है, वे हैं–

(क) नैतिक उत्थान

(ख) परस्पर सद्‌भाव

(ग) स्वतत्रता

(घ) बराबरी

(ङ) विश्वमानव की समृद्धि और शांति

इन मन्तव्यो को लेकर उन्होंने चाहे अलग-अलग कविताएं नही लिखी तो भी विभिन्न कविताओ में विद्यमान इन स्वरों को आसानी से पहचाना जा सकता है ।

स्वच्छंदतावाद :

कुछेक कवियो की रचनाओं पर स्वच्छंदतावाद का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है । परंतु यहाँ यह अंग्रेज़ी और हिंदी की भाँति एक प्रवृत्ति बनकर अलग से पनप नहीं पाया । डोगरी कवियों ने प्रकृति चित्रण मे कहीं-कहीं स्वच्छंदतावादी वैचारिकता को दर्शाया है । प्रकृति चित्रण विषयक कविता के रचे जाने की पृष्ठभूमि मे दो कारण मुख्य है :-

1. प्रकृति के क्रोड़ में अवस्थित होने के कारण के लोगों का प्रकृति से निकटता का सहज नाता ।
2. साहित्य में प्रकृति के कार-व्यापार के चित्रण की भारतीय एव पाश्चात्य परपरा का प्रभाव ।

डोगराचल की समृद्ध लोकगीत परपरा मे प्रकृति-चित्रण के गीतो का पर्याप्त सख्या में उपलब्ध होना, एक ओर जहाँ पृष्ठभूमि के प्रथम कारण की पुष्टि करता है, वहीं कवियो द्वारा प्रणीत साहित्य मे इस के प्रति विशेष झुकाव दूसरे कारण का साक्ष्य बनता है ।

शंभुनाथ की कविता 'बदली' (द्वितीय) में मानवीकरण अलकार के प्रयोग से बदली पर नारीत्व के आरोप द्वारा परंपरागत आलंबन-उद्दीपन प्रणाली को नया सस्कार दे दिया गया है । स्थूल मे सूक्ष्म की प्रकल्पना कौतूहल को जागृत करती है । छायावादी परिपाटी का अनुसरण करते हुए बदली का एक अल्हड़ बाला, परित्यक्ता, विरहिणी, कुपित विमाता, बहन आदि के रूप में चित्रण करने के उपरांत कवि अलौकिक से वास्तविक धरातल पर उतरता है स्वच्छंदतावाद में वायवी सूक्ष्म चित्रण का विशेष महत्त्व है । विवेच्य कविता के विभिन्न पद वस्तुतः प्रकृति के सूक्ष्म वायवी चित्र

ही है । यह एक तथ्य है कि अंग्रेज़ी और हिंदी दोनो भाषाओं मे स्वच्छंदतावादी कवियों ने बदली को आधार बनाकर सुदर कविताए लिखी हैं । बदली के माध्यम से जीवन के किसी विशिष्ट सत्य का उद्घाटन किया गया है । इसी विषय पर शंभुनाथ विरचित कविता तीव्र अनुभूति से प्रेरित एक सुष्ठु रचना है । यह आश्चर्य का विषय है कि ऐसी सुदर और सशक्त कविता लिखने के बाद उन्होने छायावादी शैली मे लिखने का और आगे प्रयास क्यो नही किया ।

मानवतावाद :

यद्यपि राष्ट्रवाद उनकी कविता का प्रमुख स्वर है तो भी अपनी राष्ट्रवादी विचारधारा को वे सकीर्णता की उस गर्म हवा से बचाए रखते हैं जो मानव मात्र के कल्याण मे बाधक बनती हो । उन्होंने गरीब और मध्यम श्रेणी के लोगों के समर्थन मे मानवीय पहलू से कविताए लिखी है । इन कविताओ मे मानव मात्र की सुरक्षा और भलाई की भावना परिलक्षित होती है । मानव सुखी है तो मानवता का भविष्य सुरक्षित है । यदि मानव परस्पर राष्ट्र, जाति, सीमा, रंगभेद आदि के प्रश्नो पर लड़ता रहेगा अथवा विनाश के लिए परमाणु बम और रासायनिक शस्त्र बनाता रहेगा तो मानव अस्तित्व ही खतरे मे पड़ जाएगा । आज जब कि दुनिया मे लाखो लोग भुखमरी और गरीबी से तड़प रहे है, उनकी अनदेखी करके, शांति को तिलाजिली देकर मृत्यु के साधनो का निर्माण क्या न्यायोचित कहा जा सकता है । इस तरह के अनेक प्रश्नों को लेकर उन्होने 'सिद्धी-सारी गल्ल' (सीधी-सी बात) नामक कविता में विज्ञान के असतुलित विकास पर प्रश्न-चिन्ह लगाए है । जो वस्तु मानवता के सुख एवं समृद्धि के लिए प्रयोग मे लाई जानी चाहिए थी, वह मानव जाति के कष्ट-वर्धन के लिए प्रयुक्त हो रही है । दिशाहीन विकास के कारण अनेक विकृतिया मानव समाज में जन्म ले रही है जो कि अंततः उसे ले डूबेगी । सीनाज़ोरी और धौंसपट्टी ने भलमानसता को भगा दिया है । आज मानव, मानव के दुःख में सम्मिलित नही होता । आज यदि वह इतना निस्पृह हो जाता

है कि किसी के कष्ट मे सहाई नहीं होता या किसी भूखे की चीख-पुकार पर उसके काम नही आता तो यह दुनिया रहने के योग्य नहीं रह जाएगी । यदि मानव अपना-आप पहचान ले और यह मर्म समझ ले कि संसार चार दिनो का मेला है तो मानव जीवन पर छाए सकट के बादल छट जाएगे और जीवन सुखमय हो जाएगा ।

"माहूनू केहू, मानवता केहू ऐ, की जग चार दिने दा मेला ।
माहूनू खोआंदा कैत मशाफर केहू हुन्दा मौती दा रेला ।"

मनुष्य यदि तीन बातें याद रखे कि वह मानव क्यों कहलाता है, मानवता क्या है और यह कि अतत· जीवन की परिणति मृत्यु मे होगी तो अनेक झझट समाप्त हो जाएगे ।

प्रगतिवाद :

जिस डोगरी सस्था के मच से शंभुनाथ ने अपनी प्रथम कविता का पाठ किया था, वह मुख्यता प्रगतिवादी लोगो का मच थी । डोगरी भाषा के आदोलन के दृष्टिगत यद्यपि इस मच से परपरावादी कवियो को भी पर्याप्त प्रोत्साहन दिया गया, किंतु पाँचवे-छटे दशक मे सस्था मे श्रेष्ठ साहित्य का निकष प्रगतिवादी मूल्यो को माना जाता था । युवा कवियो का दल वैचारिकता की दृष्टि से साम्यवाद का समर्थक था । दीनूभाई पत और रामनाथ शास्त्री प्रभृति वरिष्ठ प्रगतिशील लेखक डोगरी सस्था द्वारा परिचालित आंदोलन के सचालक थे । सस्था मे पठित प्रगतिवादी रचनाओं पर खुली दाद मिलती थी, जिसके कारण अनेक प्रतिक्रियावादी कवि और लेखक जनवादी विचारधारा मे ढल जाते ।

शंभुनाथ चूकि मूल रूप मे डोगरी संस्था से सबद्ध रहे थे, इसलिए व्यक्तिगत रूप में परंपरा के समर्थक होते हुए भी वे प्रगतिवाद के स्पर्श से अछूते न रहे । डोगरी लेखको को दुविधा की दोहरी मानसिकता से उबारने मे ओर सामतकालीन मानसिकता से मुक्ति दिलाने में प्रगतिवादी विचारधारा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । इस के द्वारा कविता को समाज और राजनीति से जोड़ने का अद्भुत

कार्य संपन्न हुआ । पुरातन और नूतन मूल्यो की विपरीत दिशाओ मे प्रवाहित धाराओ के मध्य टिके हुए शभुनाथ परिवर्तन की ऑधी को ठगे-से देखे जा रहे थे । किंतु शीघ्र ही वे प्रगतिवाद के प्रभाव तले बोलते दिखाई देने लगे—

"भुक्खे-नगे बदशक्ले गी, हुन आसरा थ्होदा जा करदा,
ए जुग बदलोदा जा करदा ।"

भुखे-नगे और फटेहाल लोगो के प्रति कवि की सहानुभूति उसकी मानवतावादी दृष्टि का ही अग है । एक समय था जब कवि सामतवादी मूल्यो का समर्थक रहा था । पर, बाद मे सामतशाही के गिरते हुए महल की कडियो की आवाज़ सुनता है—

"मैहूले दे बरगे कडकै दे ।"

समाज के किन्हीं वर्गों में स्वतत्रता प्राप्ति के बाद भी सामती अकड़-फूं के अवशेष विद्यमान है । इसीलिए कवि कहता है कि पुरातन शोषक मानसिकता के वस्त्र अभी पूरी तरह नही उतरे और न ही जनता रूपी घोडे से सामती रिवाज और चलन का पलान ही उतरा है —

"जुल्ले-पलाने न लग्गे दे पैहुले,
मन नि खरैदा गूढा शंगार ।"

'पलाने' शब्द के प्रयोग द्वारा कवि को यह बतलाना अभीष्ट है कि चाहे रजवाडाशाही का जूआ उतर चुका है, परतु जनता अभी परंपरा की लकीर पीटती जा रही है । "ब्हार" नामक कविता में भी ऐसे ही विचारो की अभिव्यक्ति हुई है । बहार को प्रगति की संवाहिका माना गया है । दूसरे अर्थों मे प्रवंचना मे जी रहे लोगो के लिए समानता आदि के जन-जीवन विषयक मूल्य बसंत ऋतु के समान है ।

कवि का कथन है कि श्रमिक-अधिकारों के नए युग का सूत्रपात होने से पूजीवाद घबरा उठा है । उसके दिल की धड़कन से स्पष्ट है कि माया (पूजीवाद) का सूर्य अस्त होने वाला है । रूढ़िवादी मूल्यों को नकारते हुए कवि 'बसत' के पर्व को मज़दूर और पूंजीपति के सबंधों की दृष्टि से देखता है । सामती संस्कृति के प्रतीक बसंत

पर्व पर वह कहता है कि यह तो अमीरों, राजाओं और मंत्रियों का पर्व है जो आभूषणों से लद-फद कर अपनी पूजी का प्रदर्शन करते हुए घूमते है । उनके पास खाने-पहनने को बेहतरीन वस्तुए होती हैं । अपनी शान-ओ-शौकत से वे गरीबों को निरंतर अपनी अमीरी का आभास कराते रहते हैं । गरीब मजदूर किस बूते पर बसत मनाएगा, जिसकी कुल-बिल सपत्ति मात्र एक कबल होता है । भार ढो-ढोकर वह थक-हार जाता है, फिर भी टुकड़े-टुकड़े के लिए चिंतित रहता है । आनंद प्राप्ति का कोई साधन उसके पास नही होता । अभावो के कारण वह निःश्वास फेंकता रहता है, बच्चे धरती पर लोटते और रोते रहते है, भूखो सोते है और ससार अपनी मौज-मस्ती मे निमग्न रहता है ।

कवि प्रगतिवादी आशावाद की अभिव्यक्ति द्वारा उस युग की कल्पना करता है जब तमाम साधारण लोग सुखी होगे । उनके पास खाने-पीने को होगा, नग्न तन ढकने के लिए साधारण वस्त्र होंगे, रहने को झोंपड़ी और तमाम सुविधाए होगी । जब भुखमरी न होगी, नाम लेने के लिए भी दुःख नही होगे । प्रत्येक खेत में फसलें लहलहाएगी और हरेक बच्चा पढ़ा-लिखा होगा—तभी सही बसंत आएगा ।

बसत पर्व का डोगरी भाषा के आदोलन के शुरुआती दौर में विशेष महत्त्व रहा है, क्योकि 1944 ई. मे इसी दिन इस आंदोलन की दाग-बेल डाली गई थी । बाद के वर्षों में बसंत दिवस पर आयोजित कवि सम्मेलन मे डोगरी सस्था से संबद्ध प्रत्येक कवि का प्रयास होता कि हर बार बसंतोत्सव पर नई कविता पढ़े । कुछेक कविताएं मात्र विरुद्धावली की श्रेणी मे आती थी, जबकि शंभुनाथ द्वारा लिखित बसंत इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है कि इस मे वे अभावग्रस्त गरीबों का पक्ष प्रस्तुत करना नहीं भूलते ।

अन्यत्र भी वे सर्वहारा की महिमा बखानते हुए कहते हैं कि अमीर की अमीरी का निर्धारण तुझे करना है, गरीबों को आश्रय देना है । संसार का असली बादशाह तू है । तुझे ही जग से भूख और दुःख का निवारण करना है—

"बादशाह असल ते जग्गै दा तू ऐ,
भुक्खा दे दुक्ख ते तूऐ मटाने ।"

प्रगतिवाद मे धार्मिक दृष्टिकोण का कोई स्थान नही है । अपनी रचनात्मकता के आरभिक दौर मे यद्यपि शभुनाथ ईश्वर का कही थोड़ा-सा ज़िक्र करते दिखाई दे जाते हैं तथापि इसमे किंचित् मात्र ही सही कवि का उपेक्षापूर्ण रवैया अलक्षित नही रहता । ईश्वर के स्थान पर समय और परिवर्तन को प्रतिष्ठापित किया गया है । अततः वे इस महत्त्वपूर्ण केंद्र मे सर्वहारा को ला बिठाते है । 'बगदी गंगा' और 'कार कर' कविताओ मे युगो से उपेक्षित चले आ रहे मेहनतकशो के अधिकारो की बात मुखर की गई है । लोक-काव्य में ईश्वर को 'सच्चा बादशाह' कहा गया है । शभुनाथ किसान को असली बादशाह मानते है, क्योकि दुनिया से भूख मिटाने के लिए वह अपने पसीने से धरती को सीचता है ।

उत्पादक शक्तियो के प्रति हृदय मे अत्यत विश्वास और गौरवानुभूति की प्रेरक भावनाए विद्यमान है । प्रगतिवाद से पूर्व साहित्य में प्रायः सभ्रात वर्ग को केंद्रीय हैसियत प्राप्त थी । 1935-36 ई. मे इस नवोन्मेषकारी उद्‌घोष से मेहनतकशों को साहित्य की केंद्रीय इकाई बनाया गया । शभुनाथ ने बदलते युग की नब्ज पहचान कर न्याय, यथार्थ और प्रगतिवाद को अपनी कथनी और लेखनी द्वारा विषय-वस्तु के रूप मे स्वीकार किया । 'क्लर्क' के दयनीय जीवन-वृत्त को विषय-वस्तु के रूप मे स्वीकार किया । 'क्लर्क' के दयनीय जीवन-वृत्त को विषय बनाकर लिखी कविता मे शभुनाथ यद्यपि स्थूल विषय से जूझते दिखाई पडते हैं तो भी सूक्ष्म भावानुभूति के जोर से वे इसे सफलता से निभा पाए है । प्रगतिवाद के प्रभाव तले नारेबाज़ी का जो खतरा दरपेश रहता है उस के प्रति वे लगातार सचेत रहे है । विषय के सूक्ष्म एवं अतरग पक्षो को उद्‌घाटित करके कविता मे मार्मिकता का संचार करते हैं ।

परंपरागत भाव-बोध ईश्वर भक्ति को संसार से पार लगाने का साधन मानता है । पार लगाने से तात्पर्य जीवन को सफल बनाने से है । साथ ही मृत्यु के उपरात भव-सागर को पार करने की

मिथिकीय दृष्टि भी इसमे निहित है । शभुनाथ न तो ईश्वर को और न ही कर्मो को जीवन सार्थक बनाने का साधन मानते है । रिवायती भाव-बोध के विपरीत वे मेहनत को जीवन सफल बनाने का साधन मानते है । उनका कथन है कि अब वे गले-सड़े सामती बधन और बुराइयां नही रहीं, जबकि कारीगरो को विवश होकर बेगारो का जीवन व्यतीत करना पड़ता था—

"हुन नि ओ अलामता, कीरने कशामता,
कारीगर बचारें गी, किसमती दे मारे गी ।"

मेहनत की महत्ता बतलाते हुए वे कहते है कि मेहनत की कुंजी से तेरे भाग्य के बद ताले खुल जाएंगे । आलस्य त्याग कर हिम्मत के आश्रय में जाने की देरी है, तुम्हें धूलि मे सोना मिलेगा । तिनके के पीछे लाखो की दौलत छिपी मिलेगी—

"उट्ठ हा ब्हादरा खोल हा अक्ख,
कक्खे दे ओह्लै-ई छप्पे दा लक्ख ।"

मेहनत रूपी किश्ती का नाविक बन और अपनी किसमत के उस किनारे पर पहुँच जा जहाँ दौलत के खजाने छिपे है । ससार में जीवन को एक अभियान समझना होगा तभी सफलता के द्वार पर दस्तक दी जा सकेगी । अभियान मेहनत का पर्याय है । मनुष्य अपने दृढ आत्म-विश्वास के बल पर पत्थरों और चट्टानो से टकरा जाता है । परिवर्तन के चक्र को घुमाए रखने के लिए आदमी स्वय को समय की चक्की में झोक देता है —

"ए जुग चक्की दा चक्कर ऐ ।
चक्की दा पक्का पत्थर ऐ ।
माह्नू बी कैसा बक्खर ऐ ।
ब'ट्टें नै लैदा टक्कर ऐ ।
गाला बनिऐ इस चक्की दा ।
चक्की दे पुड परताऽ करदा ।
ए जुग बदलोंदा जा करदा ।"

चक्की के प्रतीक द्वारा कवि ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के महत्त्वपूर्ण सिद्धात की पुष्टि की है । विकास की चिरंतन प्रक्रिया मे

घात-प्रतिघात-न्याय से वस्तु अपने ही विरोधी तत्त्व को जन्म देती है । मानव अपना बलिदान देकर विकास के चक्र की गतिशीलता को कायम-दायम रखता है और अवसर उपस्थित होने पर चक्की के इस भारी-भरकम पत्थर को उल्टा देता है । अतएव, ऐतिहासिक विकास में एक युगातकारी दृश्य प्रस्तुत हो जाता है । मानव शक्ति के प्रति कवि को असीम विश्वास है । वह एकाधिक कविताओ मे मेहनतकशो का मानव सभ्यता और सस्कृति के मूल निर्माता के रूप में बखान करता है ।

अपनी अनथक मेहनत और प्रतिभा से श्रमिक वर्ग ससार की तमाम वस्तुओ का उत्पादन करता है । जन्म से मरण तक यह दूसरों के सुख-ऐश्वर्य के लिए खटता है ।

प्रगतिवादी साहित्य मे शोषित के साथ-साथ शोषक की चर्चा भी खुलकर की जाती है । इससे रचना मे उथलापन आने का खतरा प्रस्तुत रहता है । सभवतया इसीलिए शभुनाथ ने शोषक वर्ग का वर्णन कम ही किया है । उन्होने प्रायः शोषण की तमाम जिम्मेवारी समय पर डाल दी है । जहाँ कही शोषक शक्तियो के वर्णन की आवश्यकता कवि महसूस करता है, वहाँ उन्हे परोक्ष स्थिति मे रख कर, मात्र सुझाव द्वारा उनके प्रभाव का बखान किया जाता है । शोषक का अन्य पुरुष के रूप मे वर्णन करते हुए 'बगदी गगा' नामक कविता मे कहता है कि कारीगर सदा उसके भाडे-बरतन गढता रहा—परंतु वह (शोषक) कभी संतुष्ट न हुआ । अपने दबदबे और अख्तियार के नशे मे वह इन्हे अपने कमीन मात्र मानता था, इन से सेवा के काम लेता था, मगर इन्हें भरपेट भोजन नहीं देता था । सलीके से जीने के अधिकार की बात तो अलग, वह इन्हें अपने सामने रोने तक नही देता था ।

शोषित वर्गों को जात-कुजात के गर्त मे धकेल कर इन्हें पढने-लिखने से वचित रखा गया । पिछड़ी जातियो मे सम्मिलित इन विपत्तिग्रस्त लोगो को बोलने और मन की बात मुखर करने का अधिकार तक न था । इनके आगे बढ़ने के प्रत्येक मार्ग पर रुकावटे खड़ी की गई थीं—

"बिपता च ए जीभ खोली निं सकदे,
सदिए दे दब्बे दे बोली नि सकदे ।
इब्बी न माह्नू ते जीने दा हक्क ऐ,
फ्ही इन्दे अग्गें की लग्गा दा डक्क ऐ ।"

मात्र पिछडी जातियो के कष्टो का चित्रण करके शभुनाथ अपने कवि-कर्म की इतिश्री नही कर लेते, अपितु इन्हे अधिकारों के प्रति जागृत भी करते हैं । युगों पुराने कष्टो के निवारणार्थ वे उन्हें कमर कसकर समय प्रवाह की बहती धारा मे कूद पड़ने को प्रेरित करते है । वरिष्ठ डोगरी कवि दीनूभाई पंत द्वारा लिखित मज़दूर-किसान के युगारभ सबधी गीत से प्रेरित होकर शभुनाथ शोषित कामगारो से उन पर जबर्दस्ती लपेटा गया शोषण का कंबल उतार फेंकने का आहूवान करते है । नए युग मे प्रवेश के लिए पर तौलने का निदर्शन करते हुए कहते है –

"उठ हुन, उठ हुन, उठ मजूरा,
स्वाक हा जिद ते सुट्ट हां भूरा ।"

"स्वतत्रता अपने सग जनतत्र का तोहफा लेकर आई है । अब तू छाती तानकर हुंकार भर । लज्जा, अधीनता और नम्रता सदैव प्रासगिक रहने वाली वस्तुए नहीं है । यह सामती शिष्टाचार, शोषक शक्तियों द्वारा कमज़ोर लोगो पर थोपा गया था । अब कोई किसी का दास नहीं है । इस युग मे जो मेहनत करेगा, वही सुख का अधिकारी होगा । समय के करवट बदलने से तेरे ओठों पर मुस्कान खिल उठी है ।"

प्रगतिवाद से सबद्ध जो स्वर शभुनाथ की कविता मे मुखर हुए हें, वे इस तरह है–

(क) मानव की असीम शक्ति और श्रम की महत्ता ।

(ख) किसान-मज़दूर के प्रति सहानुभूति । पूजीपति और शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह ।

(ग) सकीर्णता और रूढ़ियो पर चोट । यथा–

"जाती-कुजाती दा भरम नि कोई,
बक्खरा-बक्खरा धरम निं कोई ।"

(घ) सामयिक समस्याओ के प्रति जागरूकता ।

(ङ) सरल भाषा एवं शैली ।

इसके साथ ही उन्होने प्रगतिवाद से सबद्ध कतिपय महत्त्वपूर्ण सिद्धातो की पूर्ण अवहेलना भी की है । यथा —

1. **रूस आदि साम्यवादी देशों का गुणगान—**

कट्टर राष्ट्रवादी होने के कारण वे किसी बाहरी देश और उसकी लाल सेना की स्तुति नहीं कर पाए ।

2. **धर्म विरोध—**

यद्यपि वे धार्मिक उन्माद के पक्षधर नही है और न ही धार्मिक भेदभाव के समर्थक हैं तथापि इसे अफ़ीम कहकर त्याज्य करार नही देते । ईशवरीय सत्ता के प्रति उन्होने अधिक नहीं लिखा, तो भी प्रगतिवादी दृष्टिकोण की कविता 'बगदी गंगा' मे अप्रत्यक्ष रूप से गरीब लोगो की दुर्दशा का निहोरा ईश्वर से किया गया है —

"जनता दे बिच्च ऐ जे इन्दा शमार,
फ्ही की नेई सुनदा तू इन्दी पुकार ।"

3. **उन्मुक्त प्रेम—**

डोगरा समाज मे प्रेम को नितांत व्यक्तिगत मामला माना जाता है । दुनियावी प्रेम पर उन्होने दो-एक कविताए ही लिखी है और उनमे विषय को निहायत शालीन ढंग से निभाया गया है । उन्मुक्त प्रेम को आधार बनाकर डोगरी की सपूर्ण काव्य यात्रा मे एक भी कविता आज तक नही लिखी गई । इस विषय को लेकर शभुनाथ के दुस्साहस न करने की पृष्ठभूमि को सहज ही समझा जा सकता है ।

4. **नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण—**

छटे-सातवे दशक तक डोगरा समाज में सयुक्त परिवार को आदर्श परिवार माना जाता रहा था । स्त्री को घर में केंद्रीय हैसियत प्राप्त थी । प्रगतिवादी साहित्यकार पति को ऐसे शोषक के रूप में चित्रित करते हैं जो पत्नी का शोषण करता है, जबकि सामतवाद के गर्भ से निकले डोगरा समाज में पति-पत्नी के मध्य पाँचवे-छटे दशक तक ऐसे समीकरण नहीं उभरे थे, जिन के आधार पर पति को शोषक

मानकर नारी के समान अधिकारो की घोषणा की जाती ।

अतएव स्पष्ट है कि प्रगतिवादी सिद्धातो को उन्होने निजी वैचारिकता के साँचे में ढाल कर ग्रहण किया है । तत्कालीन समाजिक वस्तु-स्थिति के प्रति ऑखे मूदकर उन्होने प्रगतिवाद का अधानुकरण नही किया । प्रगतिवाद को आंशिक रूप से ग्रहण करने का एक कारण यह भी है कि उन्होने इस साहित्यिक प्रवृत्ति से उन्ही सिद्धातो को लिया है जो उनके मानवतावादी अथवा राष्ट्रवादी सिद्धातो की पुष्टि करते हैं । दूसरे उन्होने कभी कम्यूनिस्ट होने का दम नही भरा । इसलिए प्रगतिवाद को अपने वक्त का यथार्थ मानते हुए भी उन्होंने इसे मात्र एक साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में ग्रहण किया । यह 'वाद' जहाँ कही उनकी व्यक्तिगत धारणा का उल्लंघन करके आगे बढ़ता है, उसी बिंदु पर वे उसे त्यागना श्रेयस्कर समझते है ।

राष्ट्रीय भावना :

कौम, जन्म-भूमि तथा सस्कृति की अलग शिनाख्त की भावना, राष्ट्रीयता का प्रमुख लक्षण है । यह ऐसी अनुभूति है जिसके माध्यम से किसी भौगोलिक अथवा सास्कृतिक खंड के लोग अपनी अस्मिता और विशिष्ट पहचान के प्रति सजग एव सक्रिय रहते है । धर्म, भाषा, संस्कृति और इतिहास की सांझ के साथ-साथ राजनीतिक और आर्थिक महत्त्वाकाक्षाएं राष्ट्रीय भावना को जन्म देने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहती है ।

भारत जैसे विस्तृत आकार के देश मे, जहॉ विभिन्न भाषाए, सस्कृतिया और अनेक क्षेत्रीय आकाक्षाए पनप रही है, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की साझ, राष्ट्रीय भावना के स्फुरण मे मुख्य भूमिका निभाती दिखती है । बहुसख्यक समाज की धार्मिक एकता और आधुनिक भाषाओ का सस्कृत-मूलक होना अथवा सस्कृत द्वारा प्रभावित होना, क्षेत्रीय सस्कृतियो की विशिष्टता के बावजूद उनका वृहद भारतीय सस्कृति के महासागर मे समाहित हो जाना—अनेकता में एकता के चद उदाहरण हैं । क्षेत्रीय भावनाओ के स्वाभाविक

प्रस्फुटन के साथ-साथ सदियो से चला आ रहा सास्कृतिक सश्लेपण भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण मे एक निर्णायिक तत्त्व है ।

प्रगतिवादी साहित्य शोषण-विहीन विश्व समाज की बात करता है और रूढ़ियो को अस्वीकार करके नई मानव संस्कृति की जो बात करता है व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रीय भावना उसके आडे आती है । अतएव साम्यवादी देशो मे उभरने वाले मतभेदो को मात्र सैद्धातिक और आर्थिक हितो का टकराव मान लेना पूर्ण सत्य नही है । राष्ट्रीय हितो के प्रति निष्ठा के कारण, एक ही सिद्धात अर्थात् मार्क्सवाद के अनुयायी होते हुए भी रूस और चीन मे सीमा विवाद का उठना इस बात का स्पष्ट सकेत है कि फिलहाल राष्ट्रीयता के घेरे मे रहते हुए ही मानव कल्याण की बातें करना अधुनातन समाज का कटु यथार्थ है । सदियो पहले भारत भूमि से सारी पृथ्वी को एक घर मानने का उद्घोष हुआ था —

"पृथिव्यै समुद्र पर्यन्ताया एक राष्ट्र ।"

प्रकारांतर से यह विश्व मानव की परिकल्पना है । परंतु आज के विश्व मानव की राजनीतिक परिकल्पना एक अव्यहार्य दर्शन प्रतीत होती है । यही कारण है कि शभुनाथ ने प्रगतिवाद को राष्ट्रीयता की सीमाओं के भीतर ग्रहण किया है ।

एक बूढ़ा देश जो सदियों की गुलामी के उपरात आज़ादी के कायाकल्प से पुनः युवा होकर अगडाई ले रहा था, उसकी विशाल सीमाओ पर लोलुप दृष्टि गड़ाए दुष्ट शत्रु खडा था । आजादी की प्रातः से सन् 1971 ई. तक भारत की सीमाए चार बार आक्राताओ का दुस्साहस झेल चुकी थीं । यही कारण है कि डोगरी कवियो मे राष्ट्रीय-भावना दृढ़ से दृढ़तर होती चली गई है । राष्ट्र की अपेक्षाओ से जुड़कर ही कोई साहित्य सार्थक एव सारगर्भित कहलाता है ।

शभुनाथ ने राष्ट्रीय भावना का उद्बोधन इस तरह किया है—

1. **जन्म-भूमि डुग्गर से प्रेम**—कवि डुग्गर को अपना घर मानकर **इसके** सुदर प्राकृतिक उपादानो का हृदयहारी वर्णन करता है । उसका कथन है कि प्रकृति के उपहारो से लदी डुग्गर भूमि के आगे स्वर्ग

की दृश्यावलि भी फीकी पड़ जाएगी–

"जाड़-दराड़ न घने-घनेरे, रुक्खें भरोची दी इक इक रक्ख,
प्रभु दी देन न नेहू नजारे, फिक्का बझोदा सुरगै दा दक्ख ।"

उसका विश्वास है कि यहाँ प्रवाहित होने वाली प्रेम की गगा तमाम लोगो के मन की मैल धोने मे समर्थ है । इससे स्पष्ट है कि अपने क्षेत्र से लगाव वस्तुतः राष्ट्र प्रीति का ही वाचक है ।

जन्म-भूमि के प्राकृतिक सौदर्य के वर्णन के उपरात वह डोगरा जाति की ऐतिहासिक उपलब्धियो, वीर-विद्वान एव कलावत सपूतो के कारनामो का स्मरण करता है ।

स्वदेश की आन-मर्यादा पर मर मिटने वाले मिया डीडो, सीमाओं की रक्षा के लिए प्राण-न्यौछावर करने वाले ब्रिगेडियर राजेंद्र सिह, ज्ञान एवं साहित्य के क्षेत्र मे नाम कमाने वाले पं. काकाराम, दत्तू, गंगाधर, रामधन एव गंगाराम को कवि श्रद्धा से स्मरण करता है । यह लोग डोगरा भूमि के सपूत है । इनके आगे डोगरा जाति श्रद्धावनत है । कवि का कथन है, डोगरा लोग तो मात्र देश-प्रेम को जीवन का सार मानते है –

"देसै कन्ने प्यार, बस इन्दे जीनै दा सार ।"

क्षेत्रीय सौदर्य-उद्भावना और क्षेत्रीय सपूतो के गौरवशाली कामो के बखान द्वारा चाहे क्षेत्रीय भावनाओ की तुष्टि होती दीखती है, किंतु अंततोगत्वा इन के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं की पुष्टि ही होती है । जन्मभूमि और इसके वीरों का गुणगान करके कवि भारतीयता के पेड़ की जड़ो को सिंचित करता है । इन जड़ो द्वारा क्षेत्रीय भावनाएं, राष्ट्रीय भावना में तिरोभाव पा लेती है । यह बात ध्यान देने योग्य है कि डोगरी कवि राष्ट्रीय एकता और अखडता को सर्वोपरि मानते है । कही भी क्षेत्रीय भावना को उभार कर उन्होने राष्ट्र के विघटन का न्यौता नही दिया । उनके द्वारा उद्बुद क्षेत्रीयता, राष्ट्रीय भावना की उपकारक है ।

2. **देश-प्रेम**—देश के ऋतु चक्र, पेड़-पौधो, पर्वत-नदियो के गौरव गान के साथ-साथ कवि देशवासियो के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्हे नई दिशा का सकेत भी करता है । बहुरंगी भारत भूमि

कवि चित को बेहद भाती है । उसे लगता है इसका प्रत्येक तिनका सोने और चाँदी का बना है । इस रंगीले देश मे हरेक कण हीरे के समान है-

"बांकड़ा, रागड़ा देस ऐ तेरा,
ओए अपना थापिऐ पत ते रख ।
हीरे तुल्ल एदी ऐ इक-इक फिंगर,
सुन्ने ते चादी दा इक-इक कक्ख ।"

चरित्र किसी भी राष्ट्र के निर्माण के लिए एक मूलभूत शर्त है । यदि नागरिक सद्-चरित्र होगे तो राष्ट्र का नाम ऊँचा होगा । देश के निमित्त स्वार्थ का परित्याग परमावश्यक है--

"जे मान देसै दा चाहूना स्वारथै गी छोड ।"

स्वार्थ की जड़ मे भेदवादी दृष्टि होती है, इसलिए उसे भी लाजमी तौर पर छोड़ना होगा--

"दूई दा परदा हटा जे घर बनाना ऐ ।
ए सारा देस तेरा, तेरा इक घराना ऐ ।"

दूई या द्वैत का पर्दा ही भेद-भाव का सर्जक है । यहाँ द्वैतवाद अपने परंपरागत, रहस्यवाद या अध्यात्मवाद वाले अर्थ से अलग राष्ट्रीय एकता मे बाधक भेदक दृष्टि का पर्याय है । द्वैत-भावना को मिटाकर ही हम घर बना पाएगे । डुग्गर भूमि को घर और देश को घराना मानकर कवि राष्ट्रीय एकता की दिशा मे अग्रसर होता है । यह एकता ही हमारी राष्ट्रीय चेतना का मूल स्रोत और जीवन-दायिनी शक्ति है ।

3. **निज संस्कृति पर गर्व**--संस्कृति हमारे अस्तित्व का दर्पण है, हमारी पहचान का साक्ष्य है । शंभुनाथ को भारतीय संस्कृति पर स्वाभाविक गर्व है । पॉच हज़ार वर्ष पुरानी यह संस्कृति समय के अनेक थपेड़े सहती हुई निरंतर पुख्ता और शालीन होती गई है । लोक-तत्त्व, पौराणिक मिथक और इतिहास-वृत्त आदि से प्रेरित कथ्य से भी राष्ट्रीय भावना का प्राकट्य हुआ है । सांस्कृतिक बिंबों के प्रयोग से कविता मे धरती की सोधी महक भर जाती है । इस तरह रचना राष्ट्रीय उद्भावना में निजी

अस्मिता का द्योतन करने लगती है ।

4. **स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जागरूकता की आवश्यकता**—स्वतन्त्रता की रक्षा देश भक्ति का प्रथम दायित्व है । लबे संघर्ष के बाद प्राप्त स्वतन्त्रता को कायम रखना परवर्ती पीढ़ियो की सब से कठिन परीक्षा है । स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आवश्यक है प्रत्येक देशवासी इन सिद्धांतों का पालन करे—

(क) बलिदान की भावना

(ख) एकता

(ग) देश के प्रति निष्ठा

शंभुनाथ का कथन है कि आजादी ने हमे अनेक सुविधाएं प्रदान की है, जिनमे से कुछेक यह हैं—

(1) सुखमय जीवन

(2) उन्नति के समान अवसर

(3) भाग्य सवारने के लिए मेहनत के अवसर

बहार को आज़ादी का प्रतीक मानते हुए वे कहते है कि स्वतन्त्रता के कारण हमारे राष्ट्रीय जीवन पर छाई अनिश्चितता के बादल छट गए है । गरीब और अमीर के लिए उन्नति के समान अवसर उपलब्ध हुए है । परस्पर सहयोग से देश की तकदीर बदली जा सकती है । यदि हम आपस मे लडने-झगड़ने में शक्ति ज़ाया करते रहेंगे तो आज़ादी का अमूल्य तोहफा खो देगे । एकता द्वारा स्वतन्त्रता की आधारभूमि को मज़बूत बनाया जा सकता है । शंभुनाथ ने भारत पर शत्रु देशो की कुदृष्टि की चर्चा के साथ-साथ पाकिस्तान और चीन के आक्रमणो पर भी कविताए लिखी हैं । मित्रता की आड़ लेकर चीन द्वारा किए गए विश्वासघात ने उनकी मानवतावादी दृष्टि को झकझोर दिया है । आहत राष्ट्रीय भावना के कारण चीन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया काफी तल्ख और तीव्र है । चीनियो की लिपि को बिच्छू की तरह टेढ़ा-मेढ़ा बतला कर, इसे वे कुटिल स्वभाव की प्रतिफलक मानते हैं—

"उन्दे डींग-पडींगे बिच्छू, उन्दे सुभाऽ दी देन गवाई ।"

उनका कथन है कि सर्दियो के बर्फानी मौसम में चीनी नाग

शीत-निद्रा के कारण सीमाओ पर रुका हुआ है और बातचीत की कूटनीति अपना रहा है । जैसे ही ग्रीष्म ऋतु आएगी—यह अजगर अपना फन फैलाएगा । देशवासियो से आग्रह करते हुए वे कहते है कि धूर्त की चतुराई को समझना चाहिए । उबाले जा रहे चावलो का एक दाना देखकर चावलों के गलने न गलने का पता चल जाता है । इसलिए हमे पूर्व अनुभवो से पाठ ग्रहण करना चाहिए । उनका कथन है कि भलमानसत का प्रदर्शन करते-करते हम कही अपनी स्वतंत्रता न गवा दे—

"भली-मानसी दसदे-दसदे, ऐमे निं देचै मुल्ख गोआई ।"

विदेशी शक्तियों के अतिरिक्त स्वतत्रता को पंचमागी और देशद्रोही शक्तियो से भी खतरा दरपेश रहता है । वे लोग जो दिखावे के लिए हिंदोस्तान जिंदाबाद की दुहाई देते नहीं अघाते, किंतु जिन के मन में कुछ और है, ऐसें द्रोहियो से सावधान रहने की आवश्यकता है । संभवतया उनका सकेत उन कश्मीरी नेताओ की ओर है, जिन की दोगली नीति ने भारत को अपार क्षति पहुँचाई है ।

स्वतत्रता की रक्षा के लिए हमे साप्रदायिकता, ज़ात-पात, छुआछात जैसे देश की एकता मे बाधक सामाजिक रोगो का निदान भी करना होगा ।

देश की स्वतंत्रता के लिए मर मिटने का आह्वान करते हुए कवि कहता है कि आओ प्रण करे कि क्षुद्र स्वार्थो पर लड़ने के बजाय देश के लिए प्राणों का उत्सर्ग करेगे । कवि मन ऐसे योद्धा सैनिक का गीत सुनने के लिए आकुल है जो जोखिमो मे जीता हो, जिसके हृदय मे देश और जाति के लिए गौरव हो, पंछी की तरह तेज-तर्रार हो और बैरी को कैची की तरह कतरने में आगे रहे । अततः वह देश के लिए लड़ते हुए वीर गति को प्राप्त हो, किंतु मरकर भी जिसे सब्र न हो । वह देश के सम्मान को बढ़ाए । मृत्यु के बाद ससार उसकी गाथाएं गाता रहे—

"औखे दा भरेआ जीन होऐ, मन देसै जाती दी ईन होऐ ।
तुर्त-फुर्त पंछी आगू, बैरी कतरै कैंची बागू ।
लड़दे-भिड़दे गै अमर होऐ, मरिऐ बी नि उसी सबर होऐ ।

देसा दा मान बधाई जा, जग पिच्छूं बारां गाई जा ।"

सैनिक जीवन बलिदान का पर्याय ही है । कृषि के बाद डोगरा लोगों का प्रिय व्यवसाय सेना मे सेवा करना रहा है । सैनिक जीवन देश के प्रति समर्पित जीवन है । इन्ही कारणो से शभुनाथ ने अपनी कविता में सैनिक को उच्च स्थान प्रदान किया है । "सपाई" शीर्षक कविता मे सैनिक के त्याग और बलिदान से देश को प्राप्त होने वाले सम्मान का वर्णन करते हुए कवि उस जननी को धन्य-धन्य कहता है जिसने ऐसे सपूतो को जन्म दिया । वह धूलि भी वंदनीय है जिसमे मृत्यु से किल्लोल करने वाले वीरो का छुटपन बीतता है ।

निष्कर्ष :

इस विवेचन से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि अपनी प्रशस्त एव ओजपूर्ण लेखनी द्वारा उन्होने मुख्यता देश, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता का गुणगान किया है, जबकि क्षेत्रीय भावना की कविताएं जातीय चेतना से अनुप्राणित है । इनके द्वारा कवि आस-पास के जीवन के प्रति निष्ठा और प्रतिबद्धता व्यक्त करता है । इस भाव-संपृक्ति के बिंदु से अपनी जन्म-भूमि से जुड़े रहकर कवि राष्ट्रीय चेतना के महायज्ञ मे चरु प्रेषित करता है । राष्ट्रीय भावना का काव्य, अंततः 'वसुधेवः कुटुम्बकम' की सूक्ति को सार्थकता प्रदान करता है । राष्ट्रीय भावना देश के चहुँमुखी विकास मे एक प्रेरक शक्ति की भूमिका निभा सकती है, इसी विश्वास के साथ शंभुनाथ ने इसे अपनी कविता में अत्यधिक महत्त्व दिया है ।

वैचारिकता का केंद्र-बिंदु—समय

साहित्यकार जिस परिवेश मे जीता है अथवा जिस काल-खड से गुज़रता है, उस के अक्स उसकी वैचारिकता पर जाने-अनजाने मे अकित होते रहते है । मूलतः उसकी वैचारिकता के निर्माण मे चौगिर्द की परिस्थितियो और सास्कृतिक परिवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है । यही वैचारिकता उसकी कृतियो में भी प्रतिफलित होती है । शभुनाथ ने राज-तंत्र का ज़माना देखा था । सामती मूल्यो को प्रश्रय देती रजवाड़ाशाही मे उन्होने युगो से चली आ रही कुरीतियो को जहाँ निकटता से देखा था, वहीं परंपरागत मूल्यों मे निहित मानव-मैत्री और परदुःख कातरता के उच्च आदर्शों को भी साथ-साथ पनपते देखा था । जात-पात, छूत-छात, साप्रदायिकता आदि के विषैले दंश से पीड़ित समाज के निम्न वर्गो के दुःख भरे जीवन तथा आर्थिक-सामाजिक शोषण को भी उन्होने करीब से देखा था । वे उच्च सामाजिक मर्यादाओं और नैतिकता के शाश्वत मूल्यो के प्रत्यक्षदर्शी रहे थे । इस दौर में उत्पीडन, अत्याचार, सामाजिक भेद-भाव के प्रतिगामी मूल्यो के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के ससूचक उत्कृष्ट जीवन मूल्य साथ-साथ पलते रहे थे । जम्मू-कश्मीर ऐसी रियासत थी जो भारतीय दृश्यपटल पर उभर रहे परिवर्तनो के प्रति उदासीन थी । लोग तत्कालीन स्थितियो को नियति मान कर जी रहे थे और राजतत्र के मज़बूत चगुल मे विवशतया आशवस्त थे । यही कारण है कि भारत की आज़ादी, देश विभाजन, कबायली आक्रमण, रजवाड़ाशाही के ध्वंसन तथा रियासत के भारतीय सघ मे विलयन आदि के तेज़ घटना-चक्र से रियासती प्रजा का यह परंपरागत आशवस्ति भाव पूर्णतया खडित हो गया । इसके साथ ही लोगों की बंधी-बधाई धारणाए भी टूटने लगीं । स्वतन्त्रता के पश्चात् एक नए भारत की छवि उभरने लगी, जिसमें द्रुत विकास

के साथ-साथ अनेक विसगतिया और सामाजिक विषमताए स्पष्ट होकर उभरने लगी ।

शभुनाथ इस सक्रातिक दौर के साक्षी रहे थे । शुरु-शुरु मे वे परंपरागत सामती मूल्यों को न केवल सराहते थे, बल्कि मानसिक रूप से राजतत्र व्यवस्था का एक अग भी रहे थे । किन्तु भारत पाकिस्तान के मध्य तनातनी का क्षेत्र बन जाने के कारण जम्मू-कश्मीर मे जो तीव्र राजनीतिक परिवर्तन हुए थे, उन्हें प्रत्येक चितनशील व्यक्ति हतप्रभ-सा देख रहा था । राजनीतिक परिवर्तन से सामाजिक मानदड भी प्रभावित हुए थे । उत्तरोत्तर प्रत्येक वस्तु का आर्थिक दृष्टि से मूल्याकन किया जाने लगा था । फलतः समाज के प्रति दायित्व की भावना सर्वाधिक क्षतिग्रस्त हुई थी ।

शंभुनाथ और उनकी पीढ़ी के लोग जो आज़ादी से पूर्व और आज़ादी के बाद के समय-खड के मध्य, सेतु की तरह विद्यमान थे—वे अपनी इस स्थिति के कारण परिवर्तनशील घटनाक्रम और मूल्यो की संक्रांति के द्रष्टा बनने को बाध्य थे । तेज घटनाक्रम के कारण वे बार-बार इस निष्कर्ष पर आकर ठहर जाते कि परिवर्तन जीवन का नियम है ।

परतु परिवर्तन सदा ऐतिहासिक, राजनीतिक परिस्थितियों द्वारा प्रेरित होता है—इस विज्ञान सम्मत दृष्टि के विपरीत वे परपरागत धारणा की पुष्टि करते कि परिवर्तन की डोर सर्वशक्तिमान "समय" के हाथ मे है ।

चूकि उन्होने कविता लिखना आज़ादी के बाद शुरु किया था, इसलिए सामंती आदर्शों के प्रति आश्वस्ति के भंग होने पर उन्होने समय के प्रति निजी चितन को अपनी विचारणा का केंद्र बना डाला था । उनकी कविता मे समय का एक महत्त्वपूर्ण इकाई के रूप में चित्रण हुआ है । आज़ादी तक वे परिवर्तनों के उस विशाल रेले का अवलोकन कर चुके थे, जिसे उनके पारंपरित संस्कारो ने काल-चक्र मानकर जीवन एवं सृष्टि का एक शक्तिशाली अवयव स्वीकार कर लिया था । इस दौर मे शंभुनाथ का प्रगतिवादी विचारधारा से परिचय नही था, इसलिए वे इस सास्कृतिक कालखड के कारणो को भौतिक

द्वन्द्ववाद के दृष्टिकोण से न देखकर एक आम आदमी की नजर से देखते, परखते और परिभाषित करते है । समय की सामर्थ्य के प्रति वे इतने आश्वस्त है कि इसे कवि के जीवन-दर्शन का एक अभिन्न अग मानना पड़ता है । कविता मे अवसर उपस्थित होते ही वे समय की शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने से नही चूकते । लगभग प्रत्येक संजीदा कविता मे समय का न्यूनाधिक उल्लेख जैसे कवि-धर्म का परमावश्यक अग बना हुआ है । इस अन्तः साक्ष्य पर यह कहना उपयुक्त होगा कि विषय की दृष्टि से शभुनाथ की कविता 'समयवादी' कविता है । और वैचारिकता की दृष्टि से वे सक्राति के कवि हैं ।

समय का वर्णन करते हुए कवि ने जहाँ प्रायः परिवर्तन का समर्थन किया है, वही विज्ञान द्वारा निरंतर विनाश के साधनो के निर्माण पर अपनी निराशा व्यक्त की है । समय के प्रति कवि दृष्टि निम्नलिखित उपशीर्षको में विस्तार पाती है :—

1. समय एक सामर्थ्यशाली इकाई के रूप में
2. समय परिवर्तन के मूल प्रेरक के रूप मे
   (क) सराहनीय परिवर्तन
   (ख) विनाशकारी परिवर्तन
3. समय का प्रभाव
   (क) उम्र पर
   (ख) समाज पर
4. व्यतीत का स्मरण
5. धरती पर होने वाले ऋतु परिवर्तन

समय की सामर्थ्य :

समय की विचित्र गति है । यह बिना रुके, गहरी और गभीर चाल मे गतिशील रहता है । इसकी गत्यात्मकता का आदि या अंत किसी को ज्ञात नही । यह किसी का लिहाज नहीं करता और अपने नैरंतर्य मे दाल-दलिया सब पीसता चलता है । समय के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए कवि ने कहीं-कही मानवीकरण अलकार

का प्रयोग करके इसे सर्वाधिक शक्तिशाली परंतु निर्मम इकाई के रूप मे चित्रित किया है, जिसे किसी के सुख-दुःख से कुछ लेन-देन नहीं है । यह अपनी अहम्मन्यता में निमग्न रहता है और किसी का देनदार या मोहताज नहीं ।

'प्रकृति', 'समें दा रग' तथा 'समें दा गीत' आदि कविताओ मे समय के स्वभाव, इच्छा और करणी को लेकर कवि ने अपने विचार प्रकट किए है । इन विचारो में यदि गहरे उतरा जाए तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि डोगराचल में प्रचलित लोक-कथाओ, लोक-गीतो और लोक-गाथाओ में सर्वशक्तिमान विधाता को जो स्थान दिया गया है, कवि शंभुनाथ ने उसी स्थान पर अपनी कविताओं मे समय को ला बैठाया है । डोगरी लोक-वार्ता मे विधाता को बिद्दमाता (बयमाता), होनी आदि नामों से पुकारा गया है । शभुनाथ ने समय का जो कार्य वर्णित किया है, उससे अधिकाशं स्थानो पर लगता है कि कवि परंपरागत 'होनीवाद' को 'समयवाद' के पहरावे में प्रस्तुत कर रहा है । यथा—"समय अटल है । इसे किसी से प्रीति या वैर नहीं होता । इसके समक्ष राजा और रक, भोग और वैराग्य एक समान हैं । अटूट लय में गाया जाने वाला यह ऐसा गीत है जिसे किसी साज़ की आवश्यकता नहीं होती ।"

"समय का राग परिवर्तन है । प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ दुनिया बदल रही है । समय का जहाज़ अलक्ष एवं धीमी गति से चलता रहता है । कालचक्र की इसी गति के कारण निरतर कुछ नया होता जा रहा है । इसी के गर्भ से नया जन्म लेकर पुराने को स्मृति के रूप मे सहेजता जाता है । धरती-आकाश ही नही, सृष्टि-चक्र में सब कुछ बदलता रहता है । इसीलिए एक कड़ी दूसरी से नही जुड़ती । आदमी की अकल सोच-सोचकर हार जाती है । कवि का कथन है—

"केहुड़ी चीज के ऐ ते बनने दा कारण ।"

कोई वस्तु क्या है और क्यो है । उसके निर्माण का कारण क्या है ?

वह क्षमावान सृष्टि का रचियता कौन है, इस रहस्य का सूत्र

हाथ मे नही आता । आदमी की क्या बिसात जो इस यथार्थ को समझ पाए, क्योकि उसका मुह छोटा है, उम्र की डोर भी छोटी है और अकल का घेरा क्षुद्र है, जबकि समय का अनंत प्रसार है । कवि वस्तुतः हर क्रिया का कारण समय को मानता है । यही कारण है कि प्रत्येक कविता में अवसर उपलब्ध होते ही वह समय के झरोखे में तांक-झांक करने लगता है ।

उपनिवेशवादी दासता और स्वतंत्रता :

समय के संदर्भ मे इतिहास के पन्ने उलटाने का उपक्रम भी किया गया है । 'बदलदा समां' का केंद्रीय विचार दृष्टव्य है—

दिन गुज़रते जाते हैं । समय बदलता रहता है । समय के साथ-साथ कार-व्यापार भी परिवर्तित होते है । व्यवसाय और धंधे के अनुसार जग अपनी गति बदलता है और यही गति मानव की दशा और दिशा को प्रभावित करती है । एक समय था, जब दूर-दराज़ से शक्तिशाली लोग आकर कमज़ोर लोगो की छाती पर चढ़कर मोर के समान खुशी का नृत्य करते थे । जोक की तरह गरीब जनता का रक्त पीते और उस पर राज्य करते थे । असहाय भोली प्रजा अपने शोषण मे ही सुखी थी । इसी भोलेपन और ग़फ़लत मे जब श्वास नली घुटने लगी तब विफलता के बावजूद समय की डोर पर खीचा-तानी बढ़ने लगी । जनता मुक्ति के लिए कसमसा रही थी । लोगों मे जागरण की लहर दौड़ गई । उपनिवेशवादी शोषक शक्तिया भी अपने हितो के प्रति सचेत थी । इसलिए प्रजा और शासकों मे टकराव उभरने लगा ।

तब जन-जागरण का दिवस आया और लोक-मानस मुक्ति की आकाक्षा लिए प्रश्न-वाचक नज़रो से दासता की ओर देखने लगा । अत्याचारी शक्तिया अपने अस्त्र-शस्त्र सभालकर जन-जागरण को कुचलने की तैयारी करने लगी । इसके साथ ही कूटनीति के आश्रय से भारतीय मानस मे फूट के बीज बोने के प्रयत्न होने लगे । लालच का बिरवा पलने लगा । शक्कर मे विष मिलाकर दिया जाने लगा । इस भाँति वे साँप पालने लगे । यह साँप कोई

और नही, वही लोग थे जो भारतीय स्वतंत्रता के विरोधी थे । जिस-जिसने यह विषैला पदार्थ खाया, वह देश से द्रोह करने लगा । देश-द्रोही विदेशी आका के साथ मिलकर देश का बेडा डुबोने लगे । परंतु, प्रकृति का नियम है कि क्रिया सदा प्रतिक्रिया को जन्म देती है । जितने ज़्यादा अत्याचार बढे और जितने नीच देश-द्रोही सामने आए, प्रतिक्रिया स्वरूप देश की आन-बान, शान के रखवाले उससे कही अधिक सख्या में सामने आए । आज़ादी के इन देश प्रेमी परवानो को वैरी चुन-चुनकर मार रहा था ।

नित्य-प्रति के जुल्मों ने देश-भगतों को तीखी सानों पर चढ़ाकर दृढ निश्चय प्रदान किए । आज़ादी के ये मतवाले स्वतंत्रता रूपी दुल्हन को ब्याह कर लाने के लिए रणक्षेत्र मे कूद पड़े । वे सूली को ब्याह की घोड़ी मानकर हंसते हुए इस पर चढ़ गए । ससुराल वालो ने जो-जो आदर किया (जो-जो कष्ट दिए) इन्होंने हंसकर इन्हें स्वीकार किया (झेला) । जब स्वतत्रता की घनघोर आवाज़ो से जेले भर गईं, तब ब्रिटिश साम्राज्य की नींवें डोल उठी और विवश होकर उसे भारत को आजाद करना पड़ा । अत्याचारी चौधरी अततः स्वतंत्रता रूपी अपनी बेटी आज़ादी के दूल्हों से ब्याह कर अपने देश लौटने लगा, क्योकि, अब उसे लड़की की ससुराल में टिकते हुए शर्म आती थी ।

जाते-जाते उसके हृदय मे मलाल-सा भरा था । उसे वे दिन याद थे जब वह जी भरकर इस देश का दोहन करता रहा था । भारतीय रक्त से उसके होठ तर-बतर थे और हृदय में क्षीण-सी आशा अभी जीवित थी कि शायद जाते-जाते यहाँ शरण मिल जाए । दूसरे यह कि यदि मुंह लटकाए घर लौट गए तो दुनिया मे बना-बनाया नाम डूब जाएगा । अंग्रेज जाते-जाते ऐसी करनी करना चाहता है कि दुनिया बाद में भी उसका नाम ले, उसकी नीति का लोहा माने । इसलिए उसने दूध पिलाकर पाले हुए देश-द्रोही नागो को प्रेरित किया और मजहब की आड़ में देश को दो टुकड़ो मे बाँट दिया । किसी बीमार व्यक्ति से भूत निकालने से संबद्ध लोक-अनुष्ठान मे एक लोक-विश्वास यह प्रचलित है कि

भूत जब निकलने को आता है तो वह जाते-जाते किसी पेड़ की शाखा तोड़कर अपने जाने की निशानी देता जाता है । इसी भाँति उपनिवेशवादी अंग्रेज़ इस देश को तोड़कर अपने जाने की निशानी पीछे छोड़ गया । अंग्रेज़ साज़िश का सादृश्य भूत के रूपक से देकर शंभुनाथ ने इस लोक-विश्वास को समकालीन सगति प्रदान की है । इस विहंगम उपमा के सहारे कवि ने न केवल अग्रेज शरारत का भडाफोड़ किया है, बल्कि उसकी शोषक वृत्ति की इन्तिहा पर भी रोशनी डाली है ।

बहरहाल, कवि आगे कहता है कि इस षड्यत्र से किसका भला होता । समय झिझोड़ा गया । हज़ारों घर जलकर राख मे मिल गए, लाखो लोग रक्त की नदी मे नहा उठे । चारो ओर मृत्यु का ताडव होने लगा । मानवता के लिए जीना दूभर हो उठा । घर-घर मातम छा गया । धर्म-इमान खोकर मानव हैवान बना शर्म-हया और मर्यादा की सीमाए तोड़ने लगा । परस्पर प्रेम, भाईचारा और मुलाहिजा विगत की बात हो गया । लूट-पाट, डाकाज़नी और धोखादही को अपना कर लोगो ने हाथ गदे कर लिए ।"

कवि द्वारा चित्रित यह वस्तु-स्थिति भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास की कड़वी सच्चाई रही है । इसी कारण महात्मा गाधी ने कहा था—

"आज़ादी लेने से ज़्यादा मुश्किल उसे संभाल कर रखना है ।"

आज़ाद भारत के सामने उजड़े हुए लोगो के पुनर्वास और विकास का पथ प्रशस्त करने का काम भी था । इसलिए, आज़ादी के साथ समय का दूसरा दौर आरंभ हुआ । मर्माहत देश को देश के कर्णधार अनेक तरह के उपायो से सभालने लगे । महात्मा गाँधी का आदर्श वाक्य उनके समक्ष था कि असफलता, सफलता की राह मे एक प्रमुख कड़ी का काम करती है । शभुनाथ कहते हैं कि यह वह दौर था जब अगणित बेघर-बार लोगो को जगह-जगह बसाया जाने लगा । मरे हुओं का ग़म बिसरा कर उजड़े हुए लोग दुबारा स्थापित हुए ।

"अनेक प्रकार के उद्यमो से बिगड़ी बात को सवारने के जतन

होने लगे । विदेशो से अनाज और अन्य वस्तुएं आयात करके अपेक्षित अकाल को टाला गया । देश को इससे सुख का श्वास आया और दिन गुज़रने लगे । परंतु, वैरी को आराम कहाँ, वह पुनः चारों ओर फंदे फैलाने लगा । अपने घर मे बैठे-बैठाए, उसने अपने जाति भाइयों को बहकाया । हींग, मसाला बेचने वाले कबायलियों को एकत्र करके हमारे खुशहाल देश (जम्मू-कश्मीर) पर चढ़ाई कर दी । उन्होने हत्याओ का बाजार गर्म कर दिया और कई तरह के जुल्म ढाने लगे । तब हमारे देश को भी होश आई और अपना-आप सभाला । अब अत्याचारी फरियाद करने लगा । दुष्ट हत्यारे भागने लगे । किंतु, हमारे पाकिस्तानी भाई कुटिल चाल चल ही गए । रियासत का कुछेक भाग, यहाँ के पर्वत-टीले उन्होने अपने कब्ज़े मे ले लिए ।"

"किंतु, भारत की भलमानसत देखें कि इस सब के बावजूद मर्यादा का पल्ला नहीं छोड़ा और सात समुदर पार यू. एन. ओ. में न्याय की दुहाई दी । परतु, वहाँ से न्याय की आशा रखना मात्र दुराशा सिद्ध हुआ । आक्रमित और दलित देशो की सहायता के लिए बनी समिति मानो खुदगर्ज़ों की टोली मिल बैठी हो । इसने साधु को चोर करार दिया और चोरो से भागीदारी कर ली । निर्णय के लिए उसने स्वयं मर्यादा और समय निर्धारित कर लिया । बिल्लियो के झगड़े में न्याय की तुला मानो बंदर के हाथ में दे दी गई हो । यह तो जग जाहिर है कि इस समिति ने कितने काम सवारे ।"

इस समिति के पचो का चरित्र और समिति का प्रयोजन दोनो "रुम्बल" के फल के समान सदिग्ध हैं, जिसके ऊपर आकर्षक लाली होती है, परतु भीतर कीड़े भरे होते है । इस समिति में एक व्यक्ति कोई गप हाँकता है तो उसके दो साथी उसका समर्थन करके गलत बात को पारित करवा लेते हैं । शेष दुनिया चिल्लाती रहती है, मगर इस समिति मे तमाम चीखो-पुकार अनसुनी कर दी जाती है । कश्मीर समस्या को लेकर यू. एन. ओ. की गलत भूमिका और शक्ति गुटो की बंदर-बाँट नीति के प्रति शंभुनाथ कटुता से भरे हुए हैं । इसीलिए आगे चलकर वे कहते है—"सच है, जब तक

आप के पास शक्ति और दौलत न हो, दुनिया मे कोई आपकी दुहाई नही सुनता । आज के युग मे दुनिया वेश्या की तरह मर्यादा छोडकर नाचे जा रही है ।

कवि की वैचारिकता के केद्र मे समय के साथ होने वाले परिवर्तन कितनी गहरी छाप अंकित कर चुके है—यह उपर्युक्त काव्य-भाव से स्पष्ट है, परंतु, इस कविता की विशेषता यह है कि इस का प्रत्येक पद ऐतिहासिक घटनाक्रम से संबद्ध होते हुए भी, इसमे न तो किसी जाति, नसल, कौम का नाम ही लिया गया है और न ही किसी देश, प्रदेश या प्रात का । जहाँ तक कि अंग्रेज़, कबायली, यू. एन. ओ., भारत, जम्मू-कश्मीर आदि किसी का भी प्रत्यक्ष नामोल्लेख नही किया गया । अप्रत्यक्ष उल्लेख से कविता का सौंदर्य और भी निखर आया है । यदि कवि ऐतिहासिकता से जुड़े इन नामों को कविता में ले आता तो निश्चय ही कविता का सौष्ठव क्षतिग्रस्त हो जाता ।

समय की सार्वकालिक क्षमता और सप्रभुता का परिचय देने के लिए 'समे दे रंग' शीर्षक कविता मे मिथकीय पात्रो के नामो का उल्लेख किए बिना उनके शारीरिक बल, आध्यात्मिक शक्ति और सत्यनिष्ठा का वर्णन करके कवि कहता है कि उन जैसे रण-बाँकुरे, ऋषि और सत्यवादी लोगो का आज धरती पर नाम-निशान नही रहा । उनका अस्तित्व समय की धूल मे मिल गया । भीमसेन जैसे रणवीर योधा जो हाथी को उठाकर आसमान पर फेक देते थे, या अगस्त्य जैसे तीन अजुलियो मे सात समुद्रों का जल पी जाने वाले ऋषि अथवा सत्य की राह पर अडिग रहने वाले सत्यवादी हरिश्चन्द्र जिन्होने नीलाम होने पर अपने दास की दासता स्वीकार कर ली—ऐसी महान विभूतिया भी समय के हाथो खिलौना बनी खेलती रहीं । उन सब से ऊपर समय के अमिट अस्तित्व का झंडा लहलहा रहा है ।

परिवर्तन : विकास और विनाश के दो पहलू :

परिवर्तन विकास एवं विनाश दोनों का मूल है । समय के गर्भ

से जन्मा परिवर्तन, विगत के विदा होने और नए के शुभागमन का शखनाद करता है । किन्ही परिवर्तनो को कवि जहॉ बार-बार सराहता है वही कुछेक के प्रति शकालू है । सराहना की परिधि मे ऐसे परिवर्तन आते है जिन में मानवता पर छाए युगो पुराने जात-पात, छूआछात और दासता के अवशेषो से मुक्ति की ध्वनि सुनाई देती है । कवि सामंतवाद के ह्रास को सराहता है और नई उभर रही प्रजातांत्रिक व्यवस्था के सद्गुणो की प्रशंसा करता है । वह अनुभव करता है कि प्रत्येक जीवन मूल्य बदलता जा रहा है । परिवर्तन की तेज़ गति के कारण उसे मति-भ्रम-सा होने लगा है । पुरातन आस्थाओ पर उभर आए संकट के बादल देखकर कवि अचकचा उठता है । एक ओर वह बीते वक्तो का सामाजिक शऊर न रहने से दुःखी है तो दूसरी और जवानी का फख्र महसूस करने वाले युवको, अपने 'अहं' का सार्वजनिक प्रदर्शन करने वाले लोगो, रूप का अभिमान करने वाली माननियों का अभाव भी उसे साल रहा है । वस्तुतः नए समाज के उदित होने से एक पुराना युग अस्त हुआ जा रहा है । आधुनिक मूल्यो के उभरने से जीवन मे स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता चली आई है । आज का मानव किसी यत्र के पुरज़े की भाँति हो गया है, जिसे संवेदना और भावुकता, सहानुभूतिशीलता और मानवता से विशेष सरोकार नही रहा । परिवर्तन के इसी तीव्र झोके के प्रति कवि असहमति जतलाता है, क्योंकि इसने समाजिक परिदृश्य को आमूल-चूल परिवर्तित कर डाला है ।

परिवर्तन के प्रति कवि के अहसास को तल्खी प्रदान करने में विज्ञान का भी हाथ है । एक ओर विज्ञान ने जहॉ मानवीय विकास की राहे प्रशस्त की हैं, वही इसने मानव के अस्तित्व के लिए भी भयकर खतरा पैदा कर दिया है ।

विज्ञान न केवल युगीन मान्यताओ का तेज़ी से खडन करता जा रहा है, बल्कि पुरातन और अधुनातन के अतर को भी रेखाकित करता जा रहा है । विनाशकारी शस्त्रो का उत्पादन करके विज्ञान जैसे मानवता को आत्मघात के साधन सुलभ कराता जा रहा है । रासायनिक और परमाणु शस्त्रो एव युद्ध की नवीन प्रणालियों

से वीरता की परपरागत परिभाषाए कुंठित हो उठी है । एक परमाणु बम के चल जाने से मानव जाति का नाम-निशान मिट जाएगा । पहले योद्धा छाती तानकर हाथ में तलवार और ढाल थामे शत्रु से लोहा लेते थे । किंतु, अब खंदक मे छिपकर तोपों-बंदूकों के बलबूते युद्ध करते हैं । युद्धक विमानो द्वारा धरती पर विनाशकारी बम गिराए जाते है । कवि इस बात की कडी आलोचना करता है कि पुरातन प्रतिमानो के अनुसार वीरता लुप्त हो गई है । उसके कथनानुसार कायरता को वीरता के परिधान में प्रस्तुत किया जा रहा है । विज्ञान के इस विनाशकारी स्वरूप का अवलोकन करने पर मृत्यु के नए-नए साधनों का निर्माता मानव जब धीर-बुद्धि से इस खेल पर विचार करता है तो स्वयं का बिछाया मृत्यु का जाल देखकर त्रस्त हो उठता है ।

वैज्ञानिक विकास को किसी एक सीमा पर रुकते न देखकर कवि पुनः 'समयवादी' दर्शन की शरण मे जाता है और इस निर्णय पर पहुँचता है कि समय ही मानव को दिग्भ्रमित कर रहा है । धरती से ऊबकर मानव अंतरिक्ष में चला जा रहा है । वहाँ तारो की खोज करके जाने क्या करेगा ? अपने प्रश्न का स्वय ही व्यंग्य मे उत्तर देते हुए कवि कहता हैं कि क्या मालुम वहाँ से भगवान को पकड़ कर ले आए । अब मानव का हौसला इतना बुलंद हो चुका है कि वह किसी बात से संकोच नहीं करेगा । सभव है, अंतरिक्ष में वह नई दुनिया बसा डाले । या फिर चाँद-तारों पर उतर कर मृत्यु की पकड़ से दूर हो ले । अपनी गति और दिशा बदल कर वह किस ओर चला जा रहा है—इसकी थाह कोई नही पा सकता ।

शभुनाथ परिवर्तनों के प्रति चकित भी हैं और शकालू भी । परतु, दलित वर्गों को मिलने वाले सम्मान और समानता के वे कट्टर समर्थक हैं । विज्ञान के प्रति उनका दृष्टिकोण मानवतावादी दृष्टि से उचित है । जैसे कि विनाशक शस्त्रों के उत्पादन की दिशाहीन दौड़ की आलोचना बिलकुल जायज़ और सामयिक है । परंतु, अतंरिक्ष और खगोल शास्त्र की दिशा में मानव की ज्ञान-पिपासा और वैज्ञानिक

प्रयत्नो के प्रति दृष्टिकोण प्रतिक्रियात्मक है । यह सभवतया इसलिए है क्योंकि कवि-मानस सामती जीवन दृष्टि से पूरी तरह मुक्त नही हो पाया । उसके समक्ष विज्ञान का इस दिशा में बढ़ना मानव की नियत सीमाओ का अतिक्रमण है । 'जुग बदलोंदा जा करदा' नामक एक कविता में वह अपने दिग्भ्रम को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । कवि मानस ने भारतीय उपमहाद्वीप पर होने वाले प्रत्यक्ष राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवर्तनो से तो समझौता कर लिया है, किंतु विज्ञान द्वारा मानवता के आत्मघात के लिए आविष्कृत नई विधियों और अंतरिक्ष मे दुस्साहस को लेकर वह अपने को असहमति के द्वार पर ला खड़ा करता है । कवि वस्तुतः इस आशका से ग्रस्त है कि कहीं अंतरिक्ष से छेड़-छाड़ करके मानव सपूर्ण मानव जाति के लिए कोई नई मुसीबत न खड़ी कर दे । कवि चाहता है कि आदमी अतरिक्ष के बजाय धरती की सुध ले, इसे स्वर्ग के समान बनाए । धरती पर जब अनेकानेक समस्याएं मौजूद हैं तो चॉद-तारों की ओर आदमी की बेतहाशा दौड़ क्योंकर सार्थक कहला सकती है ।

"लड़ै दे चु'ल्ली पर, फिकर तारें-चन्नें दे ।"

धरती पर देश और सीमा के प्रश्नों को लेकर आदमी मर-कट रहा है । तब भला चाँद और तारों की फिक्र किसलिए ?

धरती पर जिन समस्याओं का समाधान ढूँढने की अज़हद ज़रूरत है, उनमें दूसरो के अधिकारो को छीनने की लत, राकेट और अणुबम बनाकर एक दूसरे पर धौस जमा रहे देश, गुटों में बंटी दुनिया की परस्पर अविश्वास की दुहाई, साप्रदायिकता और कपटी नेताओं के षड्यन्त्र प्रमुख हैं । ऐसी दशा में अतरिक्ष की लालसा न तो उच्चित है और न फिलहाल वांछित ही है । इस समय यदि आवश्यकता है तो द्वैत का पर्दा हटाने की । द्वैत से कवि का तात्पर्य भेदवादी दृष्टि और महाशक्तियों के खेमों में बंटी मानवता से है । यह द्वैतवाद मिटाकर और देश-प्रांत की सीमाओं के संकुचित घेरे तोड़कर जब यह संसार मानवता का सांझा घर बनेगा तभी यह धरती रहने योग्य बन पाएगी ।

जीवन और समय का कटु यथार्थ :

समय न केवल सांसारिक घटना-क्रम को प्रभावित करता है, प्रत्युत् मानव जीवन पर भी इसकी अमिट छाप पड़ती है । जन्म के बाद बच्चा दिन-दिन बढ़ने लगता है । नवजात शिशु की ऑखो के आँसू भी थमे नही होते कि मौत फेरे मॉरने लगती है । समय तेज़ी से बीत जाता है । बच्चा जवान होता है, फिर बुढ़ापा चला आता है । आज कल मे, कल परसो में बदल जाता है । अततः मृत्यु मे परिणति होती है । समय के इस भाव और प्रभाव को लेकर भी शभुनाथ ने बहुत-सी कविताओ मे अपने दृष्टिकोण को दुहराया है । 'आजू ऐ थोड़ी ते कम्म बत्हेरे' नामक कविता में परिवर्तन-शीलता के इस पुरातन भाव को प्रस्तुत किया गया है । बचपन में आदमी कल्पना लोक में विचरण करता है कि बड़ा होकर ऐसा करूगा वैसा करूगा । संसार मेरा यशगान करेगा । परतु, जवानी पलक झपकते बीत जाती है । आयु का दरिया किसी के रोके नहीं रुकता । तब बुढ़ापा चला आता है । आदमी अपने को कमज़ोर अनुभव करने लगता है । अगले पड़ाव की सोचकर घबराता है । उसे अपनी भूल याद आने लगती है कि जीवन मे कभी किसी का भला नही किया और अब जब कि मृत्यु ने घेर लिया है क्या किया जाए ।

कवि का मानना है कि चार दिन की ज़िदगी में कुछ कर दिखाने का समय जवानी का ही होता है । तब मानव केवल रूप-सौंदर्य की चिंता करता है और अपने -आप पर इतराता है । "पत्तन" शीर्षक कविता मे कवि जवानी और बुढ़ापे के मिलन का एक अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत करता है और इसके द्वारा जीवन के कटु यथार्थ को स्पष्ट करता है । यौवन के निखार में इठलाती एक रूपसी घर से घड़ा लेकर पानी लाने नदी किनारे जाती है । वहाँ अपनी अल्हड़ जवानी के आवेग और बांकपन से आत्म-मग्न वह जल मे अपना प्रतिबिब निहार कर आत्म-मुग्ध हो उठती है । वहीं खद्‌दर की चद्‌दर लपेटे और हाथ मे छड़ी थामे, पीले झुर्रीदार चेहरे और कापती गर्दन वाली

बुढ़िया एक ओर खड़ी न जाने कब से उसे निहार रही थी । नवयौवना की जल-क्रीडा देखकर उसकी स्मृति के तार झनझना उठे । व्यतीत हो चुके समय के स्मरण से आँखो से दो आँसू उतर आए । सहसा नवयौवना की निगाह उस पर पडी तो वह भौंचक रह गई । हड़बड़ा कर अपने घडे को उठाने लगी । बुढिया से रहा न गया । वह नवयौवना के समक्ष अपने को अपराधी अनुभव करते हुए बोली— तू खेलती रह । तेरे खेलने के दिन है । कभी मैं भी जवान थी और तेरी तरह किल्लोल किया करती थी । खेल-खेल मे मै अपना-आप भूल जाया करती थी । किसी दिन बुढ़ापा घेर लेगा ऐसा कभी न सोचा था । काम-धधे मे उम्र बीत गई । अचानक समय ने चेहरे पर थप्पड़ मारा, जीवन एक जजाल बन गया । तुझे देखकर मुझे अपने दिन याद हो आए । जवानी की ऋतु कैसी सुहावनी होती है, मगर यह लौटकर नही आती । तुझे देखकर मुझे प्रभु की अद्भुत लीला का स्मरण हो आया कि बीता हुआ समय कभी नही लौटता :

इस तुलना द्वारा स्पष्ट हुए यथार्थ की बात जानकर अल्हड़ नवयौवना स्तब्ध रह जाती है । इस रूप, सौंदर्य और जवानी की ऐसी घिनावनी परिणति की बात जानकर उसने लबी, साँस छोड़ी और घर को लौट आई ।

'कड़ी' नामक कविता में पॉव के जेवर कड़ी को आधार बनाकर निरंतर बीत रही जवानी और समय की बात कही गई है । इसलिए, कवि जवानी को सभाल कर इस्तेमाल करने का उपदेश देता है । ताल-बेताल नाचता हुआ मानव कदम-कदम मृत्यु की ओर बढ़ता रहता है । अंततः यह उसके सिर पर नाचती दिखाई देती है ।

ऋतुचक्र, प्रकृति और स्मृति :

परिवर्तन के संदर्भ में प्रकृति तथा ऋतुयो के वर्णन द्वारा इन्हे, जन्म, मृत्यु आदि के सादृश्य से वर्णित किया गया है । परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभाव मानव समाज पर पड़ता है । वैयक्तिक प्रभाव से समष्टिगत प्रभाव का निर्माण होता है । इसीलिए कवि का कथन है कि इस युग मे भूखे-नंगों को आश्रय मिल रहा है । सामतशाही

के ह्रास से एक नया समाज उभर रहा है—

"अब नही रहा समय पुराना,
जनता का है राज, नया जमाना ।
तान कर छाती भर हुँकार,
सुनता नहीं कोई दबी पुकार ।"

अन्यत्र परिवर्तन के प्रभाव का वर्णन इस तरह किया गया है कि नव युग का गुणानुवाद दिखाई देता है । कवि का विश्वास है कि नये युग मे जात-कुजात का अन्तर नही होगा । मानवता ही मूल धर्म होगी । मत-मतातर के भेद नही होगे । जो मेहनत करेगा वह श्रम का फल पाएगा । नए युग मे वही सफल रहेगा जो जाग्रत होगा और समय के स्वर को पहचानेगा ।

स्मृति का संबंध समय से है । इसलिए स्मरण-वृत्ति की कविताओ को भी समय के अन्तर्गत रखना उचित लगता है । 'चेत्ते' कविता मे शंभुनाथ ने चाँद विषयक विश्वासो की पृष्ठभूमि मे अपने अतीत को जीवित किया है । इस कविता मे बालोचित मानसिक सरलता और भाषायी सादगी का अनुपम दृश्य प्रस्तुत हुआ है । इसी भाँति 'चेत्ता' कविता मे भी स्मृति के विषय मे कवि के उद्‌गार अति प्रभावशाली है—

"मुड़ी-मुडी रोलै बचपन ते जोआनी ।
तोल्लै सारी चगी-माड़ी कीती मनमानी ।
सारा जीन छीट-जन अग्गे बिछी जा ।
बाइस्कोप अक्खिए दे ओहूल्लै खिची जा ।"

स्मृति बार-बार बचपन और जवानी के पृष्ठ पलटती है । इस उपकरण द्वारा व्यक्ति अपने बुरे-भले का मूल्यांकन करता है । स्मृति के झरोखे से सारा जीवन एक छीट की तरह सामने बिछ जाता है । आँखो के सामने अपने जीवन की दृश्यावली बाइस्कोप के चित्र की तरह स्पष्ट हो उठती है ।

स्मृति मोह के कारण, कवि प्राचीन के उस सामाजिक एव सांस्कृतिक परिदृश्य के प्रति भी अपनी संवेदना और पसंद व्यक्त करता है जिसे परिवर्तन के प्रबल थपेड़ों ने पूर्णतया विगत के धूलि पूरित बवडर मे फेक दिया है । 'जुग बदलोदा जा करदा' के एक

पद का भावार्थ यों है—

"शूरवीर इन्सान न रहे ।
वे बाँके अकड़-खान न रहे ।
न रूप रहे, न मान रहे ।
न रूआब रहे, न गुमान रहे ।"

बालपन से व्यक्ति जिस परिवेश में जिया हो, जवानी की ढलान पर उसके परिवर्तित हो जाने पर वह अपने सदर्भों से कट जाता है । परिवेश से कटाव की यही पीड़ा कवि मानस को लगातार कुरेदती रही है । नए सास्कृतिक मूल्य उसे अटपटे और अपरिचित लगने लगते हैं । बाध्य होकर वह स्मृतिजीवी हो जाता है ।

परिवर्तन के निरंतर गतिमान चक्र की बात कवि, प्रकृति में ऋतु चक्र के सादृश्य से भी करता है । उसका कथन है कि जैसे बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म और मृत्यु स्थिर नही है और यह प्रकृति के नियम मे बधे हुए हैं, उसी तरह बदलती ऋतुए भी परिवर्तन का निरंतर उद्घोष करती रहती हैं । दिन-रात भी इसी नियम में बंधे हुए है ।

इस चर्चा से स्पष्ट है कि परिवर्तन की बात कवि ने निम्नलिखित कोणों से की है :—

1. निज जीवन पर परिवर्तन का प्रभाव

"साढ़े लेई ते समां जद कदे बदलेआ ।
पैहूला चगा हा जेहूड़ा जदू बदलेआ ।"

2. मानव समाज पर परिवर्तन का प्रभाव

"दिन-दिन जंदा, समा बदलदा, समे दे कन्ने धंदे ।
धदे नै जग चाल बदलदा, चाल्ला कन्ने बदे ।"

3. प्रकृति के माध्यम से परिवर्तन की अभिव्यक्ति

"ब्हार ते आई पर आई नि पूरी ।
समा ऐ झक्कै दा, दिक्खै दा घूरी ।"

अतएव शभुनाथ को परिवर्तन का चितेरा कहना सर्वथा उपयुक्त लगता है ।

डोगरी रामायण

विश्व की प्रत्येक प्राचीन सस्कृति मे परपरा के ऐसे मूल्यवान सूत्र विद्यमान रहते हैं जो सार्वभौमिक यथार्थ से अनुस्यूत होने के कारण शताब्दियों तक प्रासंगिक और जीवत बने रहते हैं । राम-कथा भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धारा मे एक ऐसा ही महत्त्वपूर्ण अंतर्सूत्र है । भारतीय जन-मानस युग-युगातर से इससे अजस्र प्रेरणा पाता आया है । साधारण जन के लिए जीवन का असाधारण आदर्श संजोए हुए यह कथा प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से कवियो के आकर्षण का केन्द्र रही है । यही कारण है आधुनिक युग में भी कवियो ने अपने सामर्थ्य की परख हेतु राम-कथा से संबद्ध, विषयों पर कलम चलाई है । हिंदी मे 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) तथा डोगरी मे 'बेद्दन धरती दी' (प्रकाश प्रेमी) इसी तरह के सद्-प्रयास है ।

राम-कथा भारतीय साहित्य एव सस्कृति की ऐसी अनुपम एव अनूठी दाय है जिस मे जीवन अपने तमाम सूक्ष्म एव स्थूल रंगो एव भेदोपभेदों सहित प्रतिफलित हो रहा है । महाकवि तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' में परिवार एव समाज से सबंधित, नैतिक मूल्यो एव बौद्धिकता-भावुकता आदि का लोक-हितकारी स्वरूप, विभिन्न पात्रो का व्यवहार एवं चित्रण भारतीय जनमानस के लिए आदर्श सस्थापक तथा अनुभव उन्नायक सिद्ध हुआ है । इस महाकाव्य का सामाजिक सरोकार इतना प्रबल है कि प्रगतिवादी आलोचक भी मानते हैं कि 'रामचरित मानस' से यदि हम उन बातो को निकाल दे जो वैज्ञानिक मन के अनुकूल नही हैं तो बहुत-सी बातें उसके बावजूद भी ऐसी शेष रह जाती हैं जिनसे आज की ज़िन्दगी में हम प्रेरणा ले सकते है ।

राम-कथा मे कवि कौशल की कितनी गुजायश है, इसका अनुभव कृत्तिवास की बगला रामायण से सहज ही हो जाता है, जिसका

मात्र एक कांड—'लका काड' ही सपूर्ण 'रामचरित मानस' से बड़ा है । इसी भॉति उडिया, तमिल तथा अन्य भारतीय भाषाओ मे प्रणीत रामायणे भी बुद्धि, कल्पना तथा भावना के समुच्चय द्वारा काव्य-कौशल के प्रतिमान बनी हुयी है । सर्वत्र राम-कथा की सरसता द्वारा जीवन के गहन तत्त्व को विश्लेषित करके सार्वभौमिक मूल्यो की स्थापना की गई है । इसलिए भारतीय संस्कृति, लोक-धर्म, व्यवहार, सदाचार, त्याग-वैराग्य आदि को प्रतिपादित करने हेतु बहुत से कवियो ने इस कथा का आश्रय लिया है । तुलसीदास के रामचरित मानस ने न केवल हिंदी भाषी क्षेत्र मे ही इन आदर्शों को प्रचारित-प्रसारित किया है, प्रत्युत् समूचे भारत, किंवा सारे विश्व में भारतीय जीवन-शैली और विचारधारा को प्रस्तुत किया है । इस विचारधारा एव जीवन शैली का केन्द्रीय विचार समन्वय, सहिष्णुता, त्याग, धैर्य एव वीरता के उच्च आदर्श है ।

बहुत से कवियो ने राम-कथा की इसी अजस्र प्रेरणा के वशीभूत विभिन्न भारतीय भाषाओ मे राम-कथा के मनोरम कथानक को काव्यात्मक परिधान पहनाया है । इसमे सन्देह नही कि राम-कथा का मूल स्रोत बाल्मीकि रामायण रही है, परंतु कवियो ने कल्पना तथा भावना का आश्रय लेकर अपनी काव्यानुभूति को युगानुरूप सगति प्रदान की है । प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओ के अतिरिक्त भारत की क्षेत्रीय भाषाओ मे इस कथानक को लेकर अनेक प्रबंध काव्य रचे गए है ।

जम्मू क्षेत्र मे राम भक्ति परंपरा बहुत पुरानी नहीं है तो भी महाराजा गुलाब सिंह द्वारा डोगरा राज की स्थापना के साथ राम लीला और राम-कथा के साथ-साथ डोगरा क्षेत्र मे राम मदिरो के निर्माण को बढ़ावा मिला । जनमानस मे प्रचलित 'ढोलरू' गीतों मे राम-कथा के कुछेक अश अवश्य ही विद्यमान हैं, परंतु यह मानने मे कोई संकोच नही करना चाहिए कि राम-कथा की जडे डोगरा जनपद मे काफी विलंब से पनपी है ।

इस भावना के वशीभूत कि और बहुत-सी भाषाओ मे राम-कथा पर प्रचुर साहित्य विद्यमान है, केवल डोगरी भाषा इससे रिक्त रही

है—डोगरी भाषा के हितैषियो की हार्दिक इच्छा थी कि डोगरी मे रामायण की रचना होनी चाहिए । शभुनाथ ने लबी इतिवृत्तात्मक कविताए लिखकर साहित्यकार मित्रो को भली-भॉति इस बात का अहसास करा दिया था कि प्रबध काव्य की रचना करने की उनमे क्षमता भी है और प्रतिभा भी । उन्ही मित्रो की प्रेरणावश शभुनाथ ने रामायण की रचना का संकल्प किया । कवि के अपने शब्दों मे—"अग्रणी साहित्यकारो ने सुझाव दिया कि मै अधेड़ उम्र का व्यक्ति हूँ, मेरे लिए समय भी कम है । हो सके तो अपनी टूटी-फूटी कविता में रामायण की रचना का प्रयत्न करू ।"

शभुनाथ विनम्रतावश अपना मूल्य कम करके आकते थे । गर्वोक्ति उनके स्वभाव मे न थी । चेहरे पर सदा खिली रहने वाली मुस्कान उनकी विनय-शीलता का साक्ष्य प्रस्तुत करती थी । अपनी कमजोरिया भी वे छिपाते न थे । अतएव जब रामायण लिखने का प्रश्न प्रस्तुत हुआ तो इस अनूठे काम के प्रति उमड़े उत्साहवश हामी तो भर बैठे, परतु इस महत्त्वाकांक्षा के आकाश की जब थाह ली तो लगा यह काम उनके वश का नही । विचार-विमर्श, मनन-अनुशीलन से राह सूझने लगी । उनके अपने शब्दो मे—"अन्ततः वह स्वामी जिसने मेरे साथियो के हृदय मे ऐसी प्रेरणा के बीज उगाए थे, वही मेरा सहायी हुआ ।"

रामायण लिखते समय एक लक्ष्य सदा उनके समक्ष रहा कि इसकी संरचना यथार्थ पर हो । इतिहास अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाए । डोगरी रामायण की रचना के प्रयोजन पर विचार करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं :—

1. डोगरी भाषा जिसमे 1960 ई. तक एक भी प्रबध काव्य नहीं था, उसे डोगरी का प्रथम महाकाव्य देने की बलवती लालसा ने कवि को इस दिशा मे प्रवृत्त किया । दूसरे अर्थो मे यह प्रेरक शक्ति उनका भाषा प्रेम था ।

2. अग्रणी साहित्यकारों का आग्रह कि अपनी प्रतिभाशाली लेखनी से रामायण की रचना करके वे न केवल अपनी ढलती उम्र का सदुपयोग कर पाएगे बल्कि उनकी शैली और भाषायी सामर्थ्य को

भी उपयुक्त विषय और वस्तु मिलेगी ।

3. व्यक्तिगत जीवन मे वे प्रायः कहा करते कि कलियुग मे राम नाम एक महिमामय महामत्र है । विश्व के तमाम मंत्र इसी मे समहित है । यही कारण है कि आम हिन्दू जब कभी किसी विपत्ति से दो-चार होता है, वह राम की शरण मे जाता है । सभवतया इसी धारणा के वशीभूत निजी जीवन के कष्टो और कठिनाइयो का कही आर-पार न पाकर वे राम-कथा की शरण ढूँढते है । जैसे धनवान व्यक्ति परलोक मे सुख की कामना से इह लोक मे कुए और बावलिया बनवाता है अथवा मदिर का निर्माण करवाता है, वैसे ही परंपरानुगामी विद्वान लोग धनाभाव की स्थिति में शब्द संपदा की ईंटो और श्रद्धा एव भावना के सुर्खी-चूने से ईश्वर महिमा का बखान करते है । शभुनाथ द्वारा डोगरी रामायण का निर्माण राम कृपा के राह खर्च के तौर पर किया गया लगता है । अपनी अकारथ बीती जा रही उम्र और अधेड होने का अहसास उन्हें परलोक की चिता से ग्रस्त किए हुए है ।

शभुनाथ विरचित रामायण का मूलाधार तुलसीदास का रामचरित मानस है । पुस्तक की भूमिका मे वे बाल्मीकीय आद्य रामायण के अध्ययन की बात भी कहते हैं—"हो सके तो आधार बाल्मीकि जी का होना चाहिए, क्योकि वे आदि कवि है और उन्ही की रामायण प्रामाणिक मानी जाती है । परंतु विगत चार सदियो से गोस्वामी तुलसीदास की रचना ने भी जनता-जनार्दन को काफी प्रभावित किया है । इसलिए दोनों का भली-भॉति अध्ययन-विश्लेषण करके अपना कार्य आरंभ करें......।"

इस स्वीकारोक्ति से स्पष्ट है कि शभुनाथ की रामायण का मूलाधार बाल्मीकि और तुलसी की रचनाए हैं । इसके अतिरिक्त बचपन से लेकर युवावस्था तक वे रामलीला मे भी नियमित भाग लेते रहे थे । इस जुडाव के कारण भी राम-कथा को सरलता से हृदयगम करने मे उनके कवि मन को कोई कठिनाई पेश न आई । डोगरी रामायण की रचना में सरल, सुबोध एव सुपाच्य भाषा का प्रयोग किया गया है । इसमें दुरूह काव्य प्रयोग, दार्शनिक प्रसंग

तथा भावातिरेक का कही कोई चिन्ह तक दृष्टिगोचर नहीं होता । उनका एक मात्र ध्येय रामचरित द्वारा ब्रह्म के सगुण एवं दुष्ट-दलन रूप को उद्घाटित-प्रकाशित करना है ताकि रामचरित डोगरा जनमानस मे गहरे पैठ सके ।

डोगरी रामायण का मुख्य ढाँचा 'रामचरित मानस' पर आधारित है । इस प्रसिद्ध ग्रंथ से विभिन्न भाव, विचार तथा कथा-प्रसग उठाकर उनका पद्यानुवाद प्रस्तुत कर दिया गया है । मानस मे राम-कथा के वर्णन तथा महत्त्व प्रकाशन के लिए शिव तथा उमा सवाद, नारद तथा सनक आदि मुनियो का वार्तालाप और गरुड़-काक भुशुडि के मध्य राम-चरित एव धर्म चर्चा को आधार बनाया गया है । शंभुनाथ ने इस रोचक शैली का निषेध करके मानस की दोहा एव चौपाइयो का साधरण छंद मे अनुवाद किया है । इन पौराणिक पात्रों द्वारा तुलसीदास ने काल, जीवन, कलियुग तथा प्रभु विषयक अनेक तथ्यो का रहस्योद्घाटन किया है, किन्तु शभुनाथ राम-कथा के इन महत्त्वपूर्ण पात्रो का स्पर्श इस दृष्टि से कदापि नहीं करते । कथानक के लिए मुख्यतः तुलसी पर आश्रित होते हुए भी शभुनाथ ने 'राम चरित मानस' के कथा-सूत्रो की मौलिकता बनाए रखी है । सादगी के आग्रह के कारण शभुनाथ तुलसीदास की अनेक भाव-भीनी चौपाइयो एव दोहो को छोड़ गए हैं । इससे शभुनाथ की रामायण रूक्ष, इतिवृत्तात्मक तथा लोक-कथा की भाँति तीव्र गति से उत्कर्ष और फिर अन्त की ओर बढ़ने वाली बन गई है । प्रकटतः डोगरी रामायण बहुधा घटनाओं का संग्रह दिखाई देती है । परिवर्तन-परिवर्धन का स्वरूप ऐसा है कि मानस का कथा-बीज धारण करते हुए भी घटनाओ का क्रम बाल्मीकीय रामायण के अनुसार रखा गया है । उदाहरणार्थ—मानस मे धनुर्भंग प्रसग के उपरांत भृगुनदन परशुराम एवं लक्ष्मण का वार्तालाप दर्शाया गया है, जबकि बाल्मीकि ने इसे बारात की अयोध्या वापसी के समय समायोजित किया है । शभुनाथ ने परशुराम प्रसग तथा अन्य प्रसंगों को बाल्मीकि के क्रम मे प्रस्तुत किया है ।

अनुवाद का मूलाधार अवधी भाषा की दोहा-चौपाई न होकर,

उसकी हिंदी व्याख्या है । यथा—

दोहा—हरषित गुरु परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत ।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपा निकेत ।

डोगरी मे वर्णित कथा-सूत्र है—

गुरु वसिष्ट, कटुम्बी, ब्राह्मण, शत्रुघनै समेत ।
चले भरत जी प्रेम रंगोए दे, प्रभु गी लैने हेत ।

इस अवधी दोहे का अर्थ गीता प्रेस गोरखपुर के सस्करण मे इस तरह स्पष्ट किया गया है-"गुरु वसिष्ठ जी, कुटुम्बी छोटे भाई शत्रुघ्न तथा ब्राह्मणो के समूह के साथ हर्षित होकर भरत जी अत्यन्त प्रेम पूर्ण मन से कृपाधाम श्री राम जी के सामने (अर्थात् उनकी अगवानी के लिए) चले ।"

यदि इस व्याख्या की डोगरी पद से तुलना करें तो यह तथ्य स्पष्ट होगा कि रामायण के पद्यानुवाद के लिए मुख्यतः हिंदी व्याख्या का आश्रय लिया गया है । अन्यत्र कही अवधी के तुकांत शब्दो को डोगरी मे भी इसी प्रयोजन से ले लिया गया है । किंतु यह बात स्पष्ट है कि ऐसा उसी स्थिति मे किया गया है जहाँ अवधी या हिंदी तुकात शब्द उसी अर्थ मे डोगरी मे भी प्रचलित हों । कई बार चौपाई की किसी पंक्ति का अर्थ अनूदित पद मे न समा पाने की स्थिति मे उसे अगले पद मे समाविष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

रामायण मे वाग्वैदग्ध्य का प्रदर्शन करने में शंभुनाथ की कलम बधी-बधी-सी रही है । इसका एक कारण तो यह है कि वे प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता की स्वकल्पित धारणा में बधकर तुलसी विरचित मानस की सीमा के भीतर ही रहे है । मानस को उन्होने राम-कथा की मर्यादा मान कर कही भी इसका उल्लघन नही किया । बाल्मीकि रामायण से संकलित कतिपय कथासूत्रो के अतिरिक्त इसमे अधिक परिवर्तन-परिवर्धन भी दृष्टिगोचर नही होता । मुख्य कथा को पकड़े हुए वे आवश्यकतानुसार बाल्मीकि रामायण के प्रसंग अथवा भाव इसमे सगुफित कर देते हैं । परंतु ऐसा बहुत कम हुआ है । इसमे सदेह नही कि उपर्युक्त दोनों

महाकाव्यो का अद्भुत गंगा-जमुनी सगम डोगरी रामायण प्रस्तुत करती है । कथा सामग्री के संयोजन, प्रस्तुतिकरण तथा छद सारल्य के कारण डोगरी रामायण एक विशिष्ट कृति के दर्जे पर पहुँच जाती है ।

रामचरित मानस जैसी अमर काव्य कृति से शभुनाथ या किसी अन्य कृत रामायण की तुलना सभवतया अनुचित जान पडती है, क्योकि एक सघन बदली की तुलना अतल गभीर सरोवर से करना प्रासगिक नही लगता । परंतु चूकि शभुनाथ की रामायण मूलतः और मुख्यतः 'मानस' पर टिकी हुई है, इसलिए इसके मूल्याकन के लिए तुलना आवश्यक हो जाती है । और यह एक तथ्य है कि अपनी शैली एव सरलता के कारण 'रामचरित मानस' जिस तीव्रता से भारत के राम स्नेही समाज मे समादृत हुआ है वैसा श्रेय प्रखर अभिव्यक्ति के बावजूद डोगरी रामायण को फिलहाल नही मिल पाया ।

तुलसीदास मूलतः भक्त कवि हैं । इसलिए उनमे धार्मिक भावना की प्रबलता है, जबकि शंभुनाथ आस्था रखते हुए भी मूलतः एक साहित्यकार है । मातृ भाषा के प्रति अतीव स्नेह का प्रकटीकरण वे प्रबध काव्य लिखकर करना चाहते थे । और जैसा कि ज़िक्र आया राम-कथा युगो से क्षमतावान कवियो के लिए उत्साहवर्धक प्रेरणा बनती रही है । इसलिए शभुनाथ की क्षमता एव वाछा के अनुसार एक मात्र राम-कथा ही योग्य विषय बन पाई । डोगरी रामायण के प्रणयन की प्रविधि में शंभुनाथ ने मुख्य कथा के लिए तुलसी का अनुगमन करते हुए भी कही एक श्रद्धावान भक्त के से उद्गार प्रकट नहीं किए, बल्कि एक इतिहासकार की तरह इतिवृत्त बयान करते चले गए । इतना ही नही तुलसी के राम जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं, वही शंभुनाथ ने कहीं-कहीं राम को बाल्मीकि की दृष्टि से चित्रित किया है । राम बहुधा एक मानव, राजा, पुत्र, पति तथा वीर-धीर योद्धा के रूप में चित्रित किए गए है । बाल्मीकि रामायण से कुछेक कथा-सूत्र और चरित्रो का प्रारूप लेकर उन्हें मानस की चयनित सरंचना पर ढाला गया है । दोनों के विचित्र सश्लेषण से डोगरी रामायण मे एक नवीनता चली आई है ।

तुलसी का रामचरित मानस निगम-आगम सम्मत है । मानस की रचना से पूर्व उन्होंने न केवल बाल्मीकि रामायण, पुराण आदि का गभीर अध्ययन कर रखा था, बल्कि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में रचित राम विषयक साहित्य का अवगाहन भी किया हुआ था । शभुनाथ मात्र आदि रामायण और मानस का अध्ययन करके इस कार्य मे प्रवृत्त हुए ।

मानस मे तुलसीदास यथावसर प्रथम पुरुष में टिप्पणी करने लगते है और मानस के सपूर्ण कथा-क्रम में आदि से अन्त तक जुड़े रहते है । बनवास के उपरांत राम के अयोध्या लौट आने पर भरत से मिलाप की अद्‌भुत छटा और भावात्मक वातावरण के वर्णन में अपनी कवित्व शक्ति को कुंठित अनुभव करते हुए वे कहते हैं—"प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहि जाति नहिं उपमा कही ।"

शंभुनाथ मंगलाचरण के रूप में प्रस्तावित वदना मे प्रथम पुरुष में निवेदन करने के उपरात प्रायः तमाम राम-कथा मे निरपेक्ष रहे है । इससे स्पष्ट हैं कि शंभुनाथ ने कथा वर्णन की एक निश्चित शैली का निर्धारण करके अंत तक उसका अनुसरण किया है । यही कारण है कि मानस मे वर्णित भावुक एव हृदयकारी स्थल जिनमें कि तुलसीदास अपने साहित्यिक उत्कर्ष का सफल प्रदर्शन कर पाए है,- को शंभुनाथ छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं । उदाहरण के लिए, विरह की अग्नि मे वर्षो दग्ध रहे परिजनो एवं पुरवासियो के हर्षित-पुलकित होने का वर्णन और उनके शोक निवारण के लिए राम द्वारा असख्य रूपों में प्रकट होकर दर्शन देने के प्रसंग का उन्होंने परित्याग कर दिया है ।

शभुनाथ द्वारा अपनाई गई शैली से दो बातें निष्कर्ष रूप मे सामने आती हैं :-

1. कथा-सूत्र को थामे वे रामायण के मुख्य मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं और इस मार्ग से निकलने वाली भावुकता की शाखा-प्रशाखाओं की प्रायः अनदेखी कर देते है ।

2. उन्हे राम का लौकिक चित्रण अभीष्ट है । इसलिए कुछेक स्थलो पर तुलसी के चमत्कारिक प्रसगो का स्पर्श नही किया गया ।

यद्यपि शभुनाथ आरंभ से ही विनम्र व्यक्तित्व के स्वामी थे, परतु मानस के अवगाहन के उपरात वे तुलसी की असीम विनम्रता एवं शिष्टता से बेहद प्रभावित हुए । इसलिए रामायण की भूमिका मे उन्होंने नम्रतावश अपने संकोच और अज्ञान के विषय मे लिखा— "अपने साथियो के चरणों में बैठकर उनकी रचनाओं को सुनने वाला एक गूंगा, बावरा व्यक्ति हूँ । कभी-कभार एकाध बेतुकी हॉक दिया करता था । बुद्धि, विद्या, धन कुछ भी पास न था । (रामायण) लिखने का काम मेरी सामर्थ्य से परे था ।.....स्वयं को मै कवि या लेखक नही समझता ।.....मै व्यापारी भी नही कि कुम्हारिन की तरह अपना भाँडा स्वय बजाऊं और सराहूँ ।"

यो लगता है जैसे वे तुलसी के शब्दो को दुहरा रहे हो—
कवि न होउ नहि चतुर कहावउं । मति अनुरूप रामगुन गाबउ।
कहँ रघुपति के चरित अपारा । कहँ मति मोरि निरत ससारा ।
—तुलसीदास

कवि शभुनाथ का कथन है—
"फ्ही पढ़ने-सुनने आले गी नौन्नां अरज गुजारी ।
मेरे औगन मन निं लाएओ, मे नेईं कोई लखारी ।"

बहरहाल, उन्होने जहाँ कही मानस-कथा से हटने का जतन किया है, वहीं कथा-धारा मे निरतरता बनाए रखने के लिए कतिपय मौलिक पदो की उद्भावना भी की है । जहाँ कही वे मानस के दोहा-चौपाई छंद मे व्यक्त भाव-बोध, कथा-सूत्र, शब्दावली अथवा सास्कृतिक रूढ़ियों के कारण अनुवाद में रुकावट महसूस करते हैं, वहीं कठिनाई से परिहार हेतु मौलिक सूझ-बूझ का प्रदर्शन करते हैं ।

तुलसीदास की कुछेक दोहा चौपाइयो के शभुनाथ द्वारा किए गए भावानुवाद की एक झलकी प्रस्तुत है :—

हनुमान भरत भेंट

1. को तुम्ह तात कहाँ ते आए ।
   मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ।

—तुलसीदास

तुस कु'न, कुत्थू आए सज्जन, मी नेहू बचन सनाए,
कन्न ते नि मी छलै दे मरे, नैन ते नि भरमाए ।

—शभुनाथ

2. मारूत सुत मै कपि हनुमाना ।
नाम मोर सुनु कृपा निधाना ।

—तुलसीदास

पवन-पुत्र, बानर जाति दा, नां मेरा हनुमान ।
दास में दीन दयाल दा, जो न कृपा निधान ।

—शंभुनाथ

राम के लौटने पर समाचार नगर मे फैलते ही स्त्री पुरुष सभी हर्षित होकर उनके दर्शनार्थ और स्वागत के लिए दौड़े—

3. दधि दुर्बा रोचन फल फूला, नव तुलसी दल मगल मूला
भरि भरि हेम थार भामिनी गावत चलि सिंधु गामिनी ।

—तुलसीदास

दुद्ध, दरुब्भां, गोरोचन, फल, फुल्ल सुन्ने दे थाल ।
लेई सुहागनां चलन गादियां, मस्त हाथी दी चाल ।

—शभुनाथ

4. जे जैसेहिं तैसेहिं उठी धावहि, बाल वृद्ध कहँ संग न लावहि।
एक-एकन्ह कहँ बूझहिं भाई, तुम देखे दयाल रघुराई ।।

—तुलसीदास

मरद जड़े बी जिस चाल्ली हे लेई पे द्रोड़न ।
बच्चा, बुड्ढा कोई नि सांभै जो रेही जा सै छोड़न ।
द्रौड़दे जदे, इक दूए गी पुच्छन बारो-बारी ।
की जी कुसै औदे दिक्खे, रघुकुल-कुंज-बिहारी ।

—शंभुनाथ

5. अवध पुरी प्रभु आवत जानी, भई सकल सोभा कै खानी।
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा, भई सरजू अति निर्मल नीरा।।

—तुलसीदास

प्रभु दा औना सुनियै अजुध्या शोभा लगी खलारन ।
त्रऊं भांती दी पौन आनियै लगी फंडाके मारन ।

सरजू दा निर्मल जल रिप-रिप कढे पासै हांबै ।
फुल्ल खिड़ी पे रुक्खें बूहुटें, बेल्ले बांदै लाबै ।।

—शंभुनाथ

पाँचवीं चौपाई के अनुवाद मे अतिम पंक्ति का भाव मूल चौपाई में अन्तर्निहित नही है । परंतु साधारणतया चौपाई के भाव को अक्षुण्ण रखने का भरसक प्रयास किया गया है । अनुवाद मे भाव को क्षति पहुँचाए बिना पद की मूल शक्ति एव समर्थ को उपयुक्त सांस्कृतिक पर्याय से व्यक्त किया गया है । यथा—

"परे भूमि नहिं उठत उठाए । बर करि कृपा सिंधु उर लाए ।
स्यामल गात रोम भए ठाढे । नव राजीव नयन जल बाढ़े ।"

—तुलसीदास

अवधी 'बर करना' के बदले डोगरी 'ओड़ करना' का प्रयोग 'उर लगना' का 'जप्फी मारना', 'रोम खड़े होना' का 'सरकढे खिल्लरना' आदि के सर्वथा उपयुक्त पर्यायो से वे मूल मन्तव्य को पूर्ण निष्ठा, सफलता एव प्रामाणिकता से व्यक्त कर पाए हैं ।

रामायण की रचना के समय शंभुनाथ के समक्ष सांस्कृतिक उद्‌बोधन की भावना प्रमुख रही है । अवसर उपलब्ध होने पर वे डोगरा संस्कृति से संबद्ध तत्त्वो का दिग्दर्शन करवाने की ताक मे रहते हैं । यद्यपि मानस के सुप्रसिद्ध कथानक मे निहित कोशलदेशीय सास्कृतिक तत्त्वो के कारण ऐसा कर पाना उतना सहज नहीं है तो भी शंभुनाथ ने यथावसर ऐसे प्रयत्न अवश्य किए हैं और राम के सुप्रसिद्ध चरित्र पर किसी प्रकार की आँच न आने देकर डोगरा संस्कृति के विशेष तत्त्वो का सुचारू आरोप करके उनके परंपरागत औदात्य को कायम रखा है । राम-सीता विवाह के प्रसग में वैवाहिक रीतिया डोगरा क्षेत्र मे प्रचलित वैवाहिक औपचारिकताओं के दृष्टिगत वर्णित की गई हैं । सास्कृतिक उद्‌बोधन की इस शैली द्वारा राम कथानक को डोगरा जनपदीय सस्पर्श दे दिया गया है । यथा, तुलसीदास द्वारा वर्णित राम और सीता के विवाह के विशद वर्णन मे प्रयुक्त लोक-तत्त्व का रूपांतरण डोगरा सस्कृति में वर्तमान लोक-तत्त्व द्वारा किया गया है । लोक-तत्त्व को जिस विस्तार

एव प्रामाणिकता से तुलसीदास अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, वैसे शंभुनाथ नहीं कर पाए । फिर भी उन्होंने अपनी ओर से रोचकता लाने के लिए लोक-संपृक्ति का भरसक प्रयास किया है ।

कविता एवं गज़ल को शंभुनाथ ने एक स्पष्ट नीति के अन्तर्गत अपने धार्मिक विश्वासों के प्रकटीकरण के लिए उपयोग मे नहीं लाया, हालांकि कही-कहीं वे ईश्वरीय विधान की सर्वोच्चता के प्रति नतमस्तक हैं । उन्हे ईश्वर से शिकायत है कि उसने उन का भाग्य लिखते समय तमाम कष्ट और अवमाननाएं उनके नाम लिख दीं, एक भी इच्छा के पूर्ण होने का वरदान न दिया । जीवन एक बोझ बन गया । इसके बावजूद वे न तो नास्तिकता धारण कर पाए और न ही खुलकर ईश्वरीय सत्ता को ललकारने की राह पर ही अग्रसर हुए । अलबत्ता, 1957 ई. के आरंभ मे उन्होने रामायण का लेखन आरंभ करके निजी आस्था को अभिव्यक्ति प्रदान की । राम की संघर्षशील जीवन-कथा उनके लिए इस दृष्टि से निहायत प्रेरणाप्रद रही है कि सिंहासन का अधिकारी होते हुए भी उन्हें न केवल बनवास मिला, बल्कि अपहरण के कारण पत्नी से वियोग, रावण से युद्ध और अंततः राज्य प्राप्ति पर पुनः पत्नी से विछोह सहन करना पड़ा । यदि धरती पर अवतरित ईश्वर के लिए भी जीवन निरंतर एक ललकार बना रहता है तो एक साधारण प्राणी होने के नाते शंभुनाथ अपने लिए इसे एक संतोषजनक स्थिति मान सकते थे । वस्तुतः शंभुनाथ अपने जीवन के कष्टो की पहचान भगवान राम के कष्टों से करके एक हार्दिक तोष प्राप्त करते थे । सेवा निवृत्ति के बाद वे प्रायः कहा करते संघर्ष ही जीवन है । राम-कथा में निहित इसी यथार्थ ने उन्हें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रामायण के प्रणयन में प्रवृत्त किया था ।

डोगरी कविता में शंभुनाथ का स्थान

किसी कवि या लेखक का साहित्यिक मूल्यांकन उसके लेखन के आधार पर किया जाता है । लेखन की दिशा निर्धारित करने मे उसके व्यक्तित्व एवं जीवन-स्थितियों का विशेष एवं प्रत्यक्ष हाथ रहता है । किंतु साहित्य में उसके स्थान का निर्धारण किस तरह किया जाए—यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ? ऐसा एकमात्र एव निर्विवाद निकष उस भाषा के विकास महायज्ञ मे उसके द्वारा प्रदत्त योगदान को ही माना जाना चाहिए । योगदान से अभिप्राय उस भाषा में साहित्य की गुणात्मक अभिवृद्धि से लिया जाता है । कुछ लोग परिमाण को रचनात्मकता का पैमाना मानने की भ्रांत धारणावश सख्या को ही योगदान की परिभाषा भी समझते हैं । जबकि ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उक्त लेखक ने मानवीय गरिमा, जीवन-यथार्थ और उर्वर कल्पना की दृष्टि से कितनी पक्व रचनाएं दी है । ऐसे भी साहित्यकार हुए है जिन्होने एकाध कृति से ही उस भाषा की विशेष विधा मे युगांत उपस्थित कर दिया । अमर कथा-शिल्पी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' नामक कहानी, इसी श्रेणी की रचना है ।

गुणात्मकता की दृष्टि से शभुनाथ की रचनात्मकता के दो पहलू पर्याप्त रूप से उजागर हुए हैं—

1. परंपरा का परिपालन
2. मौलिक अवधारणा

परपरा-पालन से तात्पर्य यहाँ उन साहित्यिक प्रवृत्तियो के अनुपालन से है जिन से शभुनाथ का समय-समय पर परिचय होता रहा है । इतिवृत्त वर्णन की शैली जहाँ उन्होने वरिष्ठ कवियों से प्राप्त की वहीं छायावाद से उनका परिचय अंग्रेज़ी और हिंदी भाषाओं के माध्यम से हुआ । प्रगतिवाद को उन्होंने तत्कालीन लेखक मित्रों

के साहचर्य से ग्रहण किया । परंतु किसी भी विचार या प्रवृत्ति को वे शत-प्रतिशत, उसके प्रचलित सैद्धातिक रूप मे ग्रहण नही करते, अपितु उसमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन-परिवर्धन भी करते हैं ।

व्यक्तिगत अनुभव और निरंतर चिंतन-मनन के फलस्वरूप वे मौलिक उद्भावना को कविता के परिधान में प्रस्तुत करते है ।

शंभुनाथ के समकालीन कवि परमानद अलमस्त ने लगभग उन तमाम विषयो पर अपनी कलम आजमाई थी, जिन्हे शभुनाथ ने अपनी रचनाओं मे स्वतंत्र रूप से उरेहा है । वे अलमस्त के व्यक्तित्व एव कृतित्व दोनो के प्रशंसक थे । परतु अलमस्त ने जहाँ कबीर की फक्कड़ शैली में ईश्वर को जगत का नियंता, कर्ता, भर्ता, हर्ता माना और सख्य-भाव से उसकी अर्चना की, वही शंभुनाथ ने ईश्वर को अपनी कविता का केंद्र बिदु नही बनाया । वे मुख्यता नियतिवाद के मार्ग पर चल पड़े थे । उन्होने अपने विचारो की अभिव्यक्ति के केंद्र में जिस वस्तु को सर्वशक्तिमान माना और सख्य-भाव से उसकी अर्चना की, वहीं शंभुनाथ ने ईश्वर को अपनी कविता का केंद्र बिंदु नहीं बनाया । वे मुख्यता नियतिवाद के मार्ग पर चल पड़े थे । उन्होंने अपने विचारो की अभिव्यक्ति के केद्र में जिस वस्तु को सर्व-शक्तिमान माना, वह ईश्वर नहीं समय है । समय या काल-चक्र का पहिया परिवर्तन को जन्म देता है—ऐसा कवि का विश्वास है । इस समयवादी सोच की पृष्ठभूमि मे भारतीय वैचारिकता का पर्याप्त दखल रहा है । काल-चक्र को ईश्वर के अधीन वर्णित किया जाता है । नियति एवं काल-चक्र आदि का वर्णन करने वाली धर्म-भीरू भारतीय मानसिकता सदा ईश्वर को कार्य एवं कारण का मूलाधार मानती रही है । इसलिए समयवाद परंपरा से ईश्वराश्रित रहा है ।

शंभुनाथ चूंकि प्रगतिवादी-साम्यवादी गुट के कवियो-लेखकों से आंशिक रूप से प्रभावित रहे थे, इसलिए उन्होने परिवर्तन का कारण ईश्वर को न मानकर समय को माना । यद्यपि वे नियतिवाद और भाग्यवाद के पोषक हैं, तथापि उन्होंने प्रगतिवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओ में की है ।

परंपरा और नए आयामों की तलाश :

शंभुनाथ को इस बात का श्रेय जाता है कि आज़ादी के तुरत बाद वर्णनात्मकता की क्षीण पड चुकी शैली को उन्होने न केवल आगे बढ़ाया, बल्कि उसमे पर्याप्त साहित्यिक सौंदर्य गरिमा एवं गाभीर्य की अभिवृद्धि भी की । प्रकृति-चित्रण विषयक कुछेक कविताओ मे उन्होने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग करके जहाँ वर्णनात्मक शैली को नया अन्दाज़ दिया, वही वर्ण्य-विषय को अधिक सार्थक और सक्षम बनाया । इस शैली मे एक ओर उन्होंने जहाँ इतिवृत्त मूलक कविताए लिखी, वही आगे चलकर प्रगतिशील दृष्टिकोण भी रूपायित किया । इन कविताओ में चित्रात्मक शैली के प्रयोग से भाव-सौष्ठव का अनुपम रूपायण हुआ है । बिब निर्माण से इतिवृत्त अत्यत आकर्षक और हृदयहारी बन पाया है—

"मस्स काले बाल, उन्दी लैहुर उन्दा खोभ,
बक्खरी गै लिश्क, उन्दा बक्खरा गै रो'ब ।
सब्भै किज दिक्खी-दिक्खी, पैहूले मुसकाई,
फ्ही झट दोनी हत्थे कन्ने पानी दित्ता ल्हाई ।"

अर्थात्—मसी के समान काले, चमकीले, लहरीले, खमदार बालों का अद्‌भुत आकर्षण था । अपना रूप निहार कर पहले तो वह स्वतः मुस्कुरा दी, फिर कही अपनी ही नजर न लग जाए, इस आशका से दर्पण बने पानी को हाथों द्वारा हिलाकर प्रतिबिबित आकृति को मिटा डाला ।

वस्तु-वर्णन की परिपाटी से आगे बढ़कर वे मानवीकरण के उपकरण द्वारा इस शैली को नए आयाम दे पाए है । एक सफल कवि की यही विशेषता है कि जहाँ कहीं वह अपनी लेखनी को रुद्ध होते देखता है, वहीं परंपरा को तराश कर नया मार्ग गढ़ लेता है ।

शंभुनाथ ने सूक्ष्म भावो पर केंद्रित कविताएं भी लिखी हैं, परंतु परपरा मोह के कारण वे इतिवृत मूलक कविताओ से तृप्ति का विशेष एहसास कराते हैं । 'फूलां दा कुर्ता', 'पत्तन', 'विधवा' आदि कविताओं

द्वारा उन्होने विशेष घटनाओ का वर्णन करने के अतिरिक्त आस-पास के जीवन के प्रति अपनी तीक्ष्ण दृष्टि का प्रदर्शन किया है और एक निश्चित संदेश भी दिया है । इन तीन कविताओ मे कथानक के रूप में एक सदेश निहित है जो आरभिक दशा मे तो रहस्य के पर्दे के पीछे छिपा रहता है, किंतु जैसे-जैसे कविता परिणति की दिशा मे आगे बढ़ती है, सदेश स्पष्ट होने लगता है । 'विधवा' नामक कविता मे वैधव्य ढोते हुए संसार मे जीने की कठिनाइयो का वर्णन है । परंतु इसका अत निहायत असहज है । पति की चिता के निकट बैठी विधवा-स्त्री कवि को विधवा के अर्थहीन जीवन का तथ्य बतलाकर स्वय चिता मे कूदकर आत्मदाह कर लेती है । आधुनिक युग मे सती की कल्पना ही रोगटे खड़े कर देती है । लगता है कवि इस विश्वास को अतरतम में कही पाले हुए है कि वैधव्य ढोने से मर जाना बेहतर है । वस्तुतः उन्होने अपनी बहन ईशरो का कष्टप्रद वैधव्य देखा था, दूसरे यह उनकी प्रथम कविता थी और अभी वे सामती मानसिकता से पूरी तरह मुक्त नही हो पाए थे—इसीलिए मध्यकालीन समाजिक कुरीति को एक समाधान के रूप मे रेखांकित करने की दिशा में उन्मुख हुए । 'पत्तन' कविता में जवानी और बुढ़ापे के कटु मिलाप का मज़र चित्रित करके अस्थिर सुखानुभूति को शाश्वत सत्य न मानने का सदेश दिया गया है । 'फूला दा कुर्ता' मे गरीब और अनुसूचित लोगों के जीवन का यथार्थ चित्रित किया गया है जो अप्रत्यक्ष रूप से पाठक के हृदय मे उन परिस्थितियो के प्रति जागृति की चिनगारी प्रज्वलित करता है जो सदियों से गरीबी के बोझ तले दबे हुए है ।

छंदोबद्ध लबी कविता की शुरुआत भी उनकी इन्हीं कविताओ से मानी जानी चाहिए । कथात्मक कविता के क्षेत्र मे सफलता का प्रदर्शन करने के कारण उन्हे तत्कालीन कवि समाज मे काफी सराहा गया । इस शुरुआती पूर्वाभ्यास के कारण बाद मे वे छंदोबद्ध रामायण लिखने की दिशा मे प्रेरित हुए । इतिवृत्त वर्णन का अनुभव होने के कारण ही वे रामायण के वृहद कथानक को सफलता से डोगरी भाषा में ढाल पाए ।

भविष्य द्रष्टा कवि :

शंभुनाथ इतिवृत्त परंपरा के अतिम कवि है । उनके बाद नई पीढ़ी ने गज़ल को सराहा और स्वागतम् कहा है । शभुनाथ ने नव युग का सुर पहचान कर गज़ल शैली मे भी सफलता दर्ज की । वस्तुतः वे ऐसे कवि हैं जिनका एक कदम बीत चुके कल मे है और दूसरा आने वाले कल मे । कदमो की यह लयात्मकता गतिशीलता की निशानी है । नये युग के साथ चलने का उनमे अदम्य साहस है । साहित्यिक चेतना की दृष्टि से वे कल और आज के बीच की कडी की भाँति है ।

धरा से जुड़ने का आग्रह और लोक-तत्त्व :

शभुनाथ अपने सास्कृतिक विरसे से लोक-तत्त्व को कल की एक अमूल्य यादगार के रूप मे संभाले हुए हैं और यह उनकी कविता की अंतरवर्ती शक्ति है । उन्होंने वर्णनात्मक शैली मे डोगरा जन-जीवन एव परिवेश का अत्यंत कलात्मक और प्रामाणिक चित्रण किया है । सांस्कृतिक रूढ़ियो के प्रयोग से कविता का धरा और जीवन से सफल गठबधन किया गया है । 'पत्तन' कविता के प्रथम चार पदो में एक औसत और आदर्श डोगरा गॉव का सूक्ष्म चित्राकंन किया गया है । "गोबर और सफेद मिट्टी से पुते कच्चे घरो का जमघट, प्रत्येक हृदय में रोपा गया प्रेम का विरवा और खुले आंगन मे लहलहाते तुलसी के पौधे । घर की मुडेर पर टिकी पौड़ी । घरों के सग बने चौतड़े, पशुओ की खुरलिया और खूटे । हर घर और ऑगन को घेरे एक परकोटा ।" इस सजीव चित्रण द्वारा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य की सृष्टि की गई है जो आगे चलकर सौदर्य भावना और अत मे जीवन के एक कड़वे सच का पर्दा खोलता है ।

'विधवा' शीर्षक कविता में विधवा द्वारा पति की चिता मे कूदकर सती होने का प्रसग चाहे कितना ही बनावटी और ग़लत क्यों न लगे, यह तथ्य है कि सामंती युग में रंजीतदेव के राज्य तक डोगरा भूमि पर सती प्रथा को सामाजिक मान्यता प्राप्त रही थी । इसे एक महान धार्मिक कृत्य माना जाता था । यही कारण है कि डोगरा

जाति की प्रत्येक प्रजाति और कुन्बे मे ऐसी अनेक देवियो को कुलदेवी माना जाता है, जिन्होने धार्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक कारणो से सती होना श्रेयस्कर समझा । जम्वाल खानदान की कुलदेवी सत्यवती उस समय सती हुयी जबकि उनकी डोली भी ससुराल नहीं पहुँची थी । सती-पूजा डोगरा समाज एव सस्कृति का एक अभिन्न अग है । अतः विधवा के आत्मदाह के विषय मे पूर्वोल्लखित पृष्ठभूमि के अलावा इस सास्कृतिक पूर्वाग्रह ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

'बदली' कविता में सांस्कृतिक जुड़ाव का परिदृश्य और भी स्पष्ट हो उठता है । 'औसियां' डालना या रेखाए खीचकर विरहणी का पति की प्रतीक्षा करना, राखी अथवा भैया दूज के लिए आकुल बहिन का रूपक, कैकेयी की ईर्ष्या जनित उद्विग्नता अथवा 'सालू', 'बारे भरना' जैसी वैवाहिक शब्दावली और अनुष्ठानो का प्रयोग कविता को विश्वसनीयता के धरातल पर पुख्तगी प्रदान करता है । अपनी रचनाओ मे उन्होंने स्थान-स्थान पर सांस्कृतिक स्पर्श देने का प्रयास किया है । उसी की एक बानगी के रूप मे 'बारे भरने' की प्रक्रिया भी है । डोगरा वैवाहिक रीति मे एक अनुष्ठान के अन्तर्गत मामा भांजी पर लौटे से पानी वारता है । धरती रूपी दुल्हन पर बादल द्वारा जल बरसाने की रूपक बॉधकर कवि ने प्रथामूलक शब्दावली के प्रयोग से कविता को मर्म-स्पर्शी मोड दिया है ।

डोगरा सस्कृति में ग्राम्य तत्त्व विशेष महत्ता रखते है । कृषि केंद्रित जन-जीवन मे फसल पकने के अवसर को अनुष्ठान का सा महत्त्व दिया गया है । उत्तर भारत मे फसल पकने पर विशेष खुशिया मनाई जाती है । नव-वर्ष के आगमन पर किसान नाचते-गाते हैं । उधमपुर, बिलावर, नागबनी और अनेक अन्य स्थानो पर लाखों की सख्या मे किसान एकत्र होकर खुशी का प्रदर्शन करते है । गाँवों मे दगल-कुश्ती का आयोजन किया जाता है ।

'भागड़ा' कविता मे डोगरा सस्कृति के इसी पक्ष को लेकर लोक-जीवन का निदर्शन किया गया है । किसान जो कि मेहनत बीजता और मेहनत ही काटता है बैसाखी के दिन बेफिक्र होकर

मेले में सम्मिलित होने के लिए निकल पड़ता है । कवि उसे प्रेरित करता है कि आज तू ढोल के ताल पर नाच ले । घड़ी-भर दरांती और दसांगी रखकर जाँघिया कस ले । शरीर पर तेल लगा और दर्पण मे चेहरा निहारकर, हाथ में रूमाल और सोटा थाम और खुशी के तालपर थिरक ले—

"ब'न्नी लै जागिया, पट्ट लश्काई लै,
सांभी लै शीशा, रमाल ते डांग ।"

शभुनाथ के समकालीन कवियो ने उन्ही की तरह कमोबेश लोक-तत्त्व का आश्रय लेकर अपनी कविता के लिए प्रासगिकता के सूत्र तलाश किए है, जबकि युवा कवियो ने लोक-तत्त्व को निष्कासित करके जैसे धरा से अपनी कविता के रिश्ते पर कुठाराघात किया है ।

प्रथम महाकाव्य का प्रणयन :

शंभुनाथ कलम और विचार के धनी कवि के रूप में उभरते है । उनकी काव्य क्षमता का साक्ष्य उनके द्वारा रचित रामायण है । डोगरी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान मात्र इस तथ्य से निश्चित है कि उन्होने डोगरी को इसका प्रथम महाकाव्य प्रदान किया । यद्यपि 'बीर गुलाब' (दीनूभाई पंत) नामक खंड-काव्य डोगरी में मौजूद था, परंतु आज़ादी के बाद उभरे सामाजिक परिदृश्य के कारण यह अपनी प्रासगिकता खो चुका था । इसमे डोगरा राष्ट्रवाद का वर्णन तो अवश्य था, किंतु इस संकुचित राष्ट्रवाद के विरोधियों को तथा उनके पंथ और जाति को संबोधित करके बार-बार ललकारे जाने से यह स्वतंत्र एवं धर्म-निरपेक्ष भारत मे साहित्यिक सद्कृति कहलाने योग्य नहीं रहा था । अतएव इस दृष्टि से प्रबंध काव्य के क्षेत्र मे रामायण ही प्रथम साहित्यिक कृति थी । इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में यह शभुनाथ का प्रथम प्रयास भी था ।

रामायण जैसे बृहद और जीवन के विविध प्रश्नों और चुनौतियों से भरे ग्रथ की रचना न केवल इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसके केंद्र में पुरुषोत्तम राम जैसे जन-नायक का व्यक्तित्व है, बल्कि इसलिए

भी कि यह ग्रंथ भारतीय जीवनादर्शों का उच्चतम मानदंड भी बन चुका है । भारतीय संस्कृति मे विश्वकोश का स्थान रखने वाले इस कथानक से कवियों ने सदा प्रेरणा पाई है । अतएव शभुनाथ के समक्ष आज के युग मे यदि किसी व्यक्ति को जीना है तो राम बनकर जीना होगा—निस्पृह, शात, छोटे-बड़े का उचित सत्कार करने वाला एव धीर-वीर योद्धा । जीवन के ज़हर को हंसकर पीने और चुनौतियो का सामना करने वाले व्यक्ति के लिए राम का व्यक्तित्व प्रकाश-स्तंभ की महत्ता रखता है । इस दृष्टिकोण ने शभुनाथ को रामायण के प्रणयन के लिए प्रेरित किया है ।

कविता : स्वरूप और प्रयोजन :

शंभुनाथ की कविताओं के विश्लेषण एवं विवेचन से कुछेक निष्कर्ष सहज ही सामने चले आते हैं । यथा—

1. उनके काव्य का मुख्य अभिप्रेत आदर्शवाद और मानवतावाद का संवर्धन, प्रतिगामी मूल्यो का मर्दन और राष्ट्रीयता का अभिवर्धन है ।

2. इतिवृत्तात्मकता, स्वच्छंदतावाद और प्रगतिवाद को अपना कर उन्होंने भारतीय फलक पर उभर रही प्रवृत्तियो से ताल-मेल बनाए रखा है । इससे उनकी कविताओं में शैली के साथ-साथ वैचारिकता के स्वाभाविक विकास को भी लक्षित किया जा सकता है ।

3. परंपरा द्वारा अनुमोदित परिपाटी के अनुरूप वे कविता की प्रयोजनीयता को स्वीकार करते हुए अपनी अधिकांश कविताओं द्वारा विशेष संदेश प्रतिपादित करते हैं ।

4. कविता में अध्यात्मवाद के सप्रयास निषेध के बावजूद कतिपय स्थानों पर वे ईश्वर का वर्णन करने लगते है ।

5. मानवतावाद के समर्थक होते हुए भी वे अहिंसा विषयक गाँधीवादी धारणाओं की पुष्टि नहीं करते । उनका विश्वास है कि हम पाश्विक मनोवृत्ति के संसार मे रह रहे हैं । भलमानसता को यहाँ कमज़ोरी और कायरता का प्रतीक माना जाता है ।

उपर्युक्त स्वरों के अतिरिक्त उन्होंने आधुनिक भाव-बोध की

कुछेक कविताएं भी लिखी हैं । इन में उन की लेखनी की धार सहज ही महसूस की जा सकती है । आज की सभ्यता ने रिश्वतखोर नामक एक विचित्र प्राणी को जन्म दिया है । 'बड्डीखोर' शीर्षक कविता में व्यंग्य और प्रवाहपूर्ण भाषा के सहारे इसी प्राणी के हास्यास्पद चित्रण द्वारा कवि ने आधुनिक समाज मे चली आई मूल्यों की गिरावट के प्रति अपनी न-पसंदगी प्रकट की है । 'क्लर्क' भी सामयिक संदर्भों से प्रेरित एक मुकम्मल कविता है । इन दोनों कविताओ मे सांस्कृतिक संक्रांति के दौर में उभरी विकृतियों पर चोट की गई है । इन दोनों का सफल लेखन इस बात का प्रबल संसूचक है कि आधुनिक विषयो पर भी कवि की मज़बूत पकड़ है । बदले हुए परिवेश को उसने सूक्ष्मता से आत्मसात् किया है, यह दो कविताएं उसी का प्रतिफल हैं । कवि मानस मे मूल्यो के विघटन को लेकर चलने वाली दुविधा आधुनिक भाव-बोध के नवीन मोड़ पर पहुँचते-पहुँचते स्वतः तिरोहित हो जाती है और उसकी कविता मे नया निखार परिलक्षित होने लगता है ।

ग़ज़ल विधा : अनुभव संपन्नता का प्रतीक :

डोगरी गज़ल की समग्र यात्रा में उनकी गज़लों का विशेष स्थान है । मार्मिकता और प्रसाद गुण संपन्नता के कारण पाठक सहज ही इन्हें समझ और सराह लेता है । अन्तर्निहित पुख्तगी के कारण डोगरी गज़ल के आरंभिक दौर में इन्होने क्रोश-स्तंभ की भूमिका निभाई थी । कथ्य, विचार एवं भाव की गहराई तथा सार्वजनीन सत्य के गुण इन गज़लों की श्रेष्ठता के मुह बोलते प्रमाण है ।

गज़ल विधा को उनकी देन निम्नलिखित बिंदुओं मे सहज स्पष्ट हो जाती है —

1. उर्दू गज़ल के स्वभाव और स्वरूप का डोगरी में अवतरण ।

2. गज़ल की व्यक्तिनिष्ठता के कोण से प्रस्तुति जिसे परवर्ती डोगरी शायरों ने भी अपनाया है ।

3. वे जिस संक्रातिक दौर से गुज़रे हैं उसका प्रभाव उनकी

वैचारिकता पर भी पड़ा है । यह तथ्य अंतः साक्ष्य के रूप मे गज़लो में वर्तमान दिखाई पडता है ।

4. परंपरा और आधुनिकता के टकराव की अनुगूज कवि मन की दुविधा के रूप मे गज़लो मे साफ सुनाई देती है ।

5. ससार का दुःखमय स्वरूप और भाग्यवाद पर विश्वास, कुछ ऐसी कड़ियां हैं जिन्हें उन्होने भारतीय जनमानस की परपरागत दाय के रूप मे गज़लों मे सहेजा है । ईश्वर से मिले कष्टो के बारे मे शिकवे के तेवर मे बात करते हुए उन्होने डोगरी कविता को नया अन्दाज़ दिया है । उनके बाद के, परतु उन्हीं की आयु वर्ग के लोगों ने ईश्वर के प्रति और भी कोरी और साफ-शफ्फाक बातें कही है । जबकि बाद के युवा कवियो ने कष्टो के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, भाग्यवाद तथा ईश्वर आदि विषयों का प्रायः निषेध-सा किया है । उन्होने प्रायः आर्थिक विषमताओं से उभरी व्यक्तिगत समस्याओ पर ध्यान अधिक केंद्रित किया है । इस तरह परंपरागत भारतीय विचार शैली जो शभुनाथ तक किसी तरह निभती चली आई थी, उन्ही के साथ लुप्त होती दिखती है ।

6. गज़ल की विषयगत निरंतरता उनकी विशेषता है । प्रायः प्रत्येक गज़ल में शेऽर ऐसे हैं जो मुसलसल चलते हैं । आम तौर पर गज़ल का प्रत्येक शेऽर अलग भाव की व्यजना करता है । परंतु यदि भावों की अलग-अलग रंगत एक नैरंतर्य में बिना अपना सौंदर्य खोये कायम रहती है तो गज़ल को सफल माना जाता है । नैरंतर्य का यह प्रयोग शंभुनाथ की अनेक गज़लो मे सफलता से निभ पाया है ।

यह तथ्य गौर-तलब है कि उर्दू गज़ल का उसलूब अपना कर भी शंभुनाथ ने उसका मिजाज़ अपनाने की गलती नहीं की, बल्कि डोगरा सांस्कृतिक खंड से अथवा भारतीय संस्कृति के महा-कोष से उपयुक्त बिंबो, मिथको तथा शब्द-पदो का समुचित प्रयोग किया है । परंपरागत उर्दू गज़ल में यूसुफ-जुलेखा, मन्सूर, लैला-मजनू जैसे प्रेम प्रतीकों का अत्यधिक प्रयोग होता रहा है, किंतु शंभुनाथ फैशन की रौ मे बह कर, इन सुप्रसिद्ध कथानकों का हवाला देने का लोभ

नही करते । वे तो विरह के उत्ताप से आँसू के मोती बनने की विशुद्ध भारतीय परंपरा से जुड़े रहते हैं ।

वे पुरातन और नूतन मूल्यों मे शाशवत के उपासक हैं । इतना ही नहीं, वे सामंतवादी जड़ता को उखाड़कर उसके स्थान पर नए जीवन मूल्यों को स्वगातम् कहने वाले कवियो मे अग्रणी है ।

परिशिष्ट-1

शंभुनाथ कृत रामायण में वर्णित

राम राज

राम दे गद्दी बौने कन्ने खुश होई त्रैलोकी,
मिटी गे सारे दुक्ख, रोग, सुख देन लगी पे चौकी ।
कोई कुसै ने कुसै हाल निं रक्खै दुक्ख बरोध,
भेत-भाव कोई रेहा नि बाकी, बधदा गेआ समोध ।।1।।

चारै बर्ण लगी पे सेबन अपना-अपना धरम,
वेद-शास्तरें बिच्च लिखेदे करदे रौहुदे करम ।
धरम अपने चौन्ने चरणें, आनी छाया जग्गै,
सुखने बिच्च बी पाप नि हुदा, दुक्ख कदें नि लग्गै ।।2।।

दुक्ख-पीड़ नेईं होऐ, नां कोई मरदा छोटी आयु,
सोहुनी बांकी देहू सबने दी, हर चाल्ली ने राजू ।
कोई दुखी ना कोई दलिद्री, ना कोई लभदा दीन,
नां मूरख, नां चगे लक्खने कोला सुझदा हीन ।।3।।

रुक्ख ते बूटे, जाड़, दराड़ें फुलदे-फलदे भरियै,
शेर ते हाथी रौंहुदे किट्ठे बड़े गै प्रेमै करियै ।
पशु, पक्खरु आपूं-बिच्चें रौहुदे बैर बसारी,
सबनें दे बिच आपूं-बिच्चें प्रीत बड़ी गै भारी ।।4।।

तुलसीदास कृत रामचरित मानस में वर्णित

राम राज्य

राम राज बैठे त्रलोका ।
हरषित भए गए सब सोका ।।
बयरु न कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप विषमता खोई ।।1।।

बरनाश्रम निज निज धरम-
निरत बेद पथ लोग ।।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि-
नहिं भय सोक न रोग ।।2।।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।
सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना ।
नहि कोउ अबुध न लच्छनहीना ।।3।।

फूलहिं फरिहं सदा तरु कानन ।
रहहिं एक संग गज पचानन ।।
खग मृग सहज बयरू बिसराई ।
सबन्हि परस्पर प्रीत बढ़ाई ।।4।।

गान पक्खरू गीत मिट्ठड़े, पशुएं दे सब टोल,
चुग्गन, चरन, कदाड़े मारन, करदे फिरन कलोल ।
ठंडी मिट्ठी ब्हा चलदी ऐ, गुन-गुन करदे भौरे,
फुल्लें दे रस चूसी-चूसी करदे घोर-मसोरे ।।5।।

बूटे-बेल्ले बिच्चा था-थां चौदा र'वै मखीर,
गमां दिंदियां दुद्ध रज्जियै, छैल, सडौल शरीर ।
धरती उप्पर बारां म्हीन्ने खेतर रौहृन रढ़े दे,
त्रेता जुगै च सतजुग आले लक्खन आई बड़े दे ।।6।।

राम प्रभु हर चाल्ली करदे भ्राएं कन्ने प्यार,
सबनें भाती उन्हे गी दसदे नीती दा व्यवहार ।
खुशी-खुशी नै बसदे-रसदे, नगरी दे सब लोग,
हर भाती ने भोगन रलिये देवतें आले भोग ।।7।।

राम प्रभु बड्डे बेल्लै गै करियै रोज शनान,
अधिकारी पुरशें दे कन्ने सभा च आई जान ।
मुनि वसिश्ट बी आई उन्हे गी वेद, पुरान सुनादे,
जान्नी जान प्रभु सब जानन, फ्ही बी मन चित लादे ।।8।।

(डोगरी रामायण से संकलित अंश)

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा ।
अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा ।
गुजत अलि लै चलि मकरदा ।।5।।

लता विटप मागें मधु चवही ।
मन भावतो धेनु पय स्रवहीं ।।
ससि संपन्न सदा रहे धरनी ।
त्रेता भइ कृतजुग कै करनी ।।6।।

राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भांति सिखावहिं नीती ।।
हरषित रहहि नगर के लोगा ।
करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ।।7।।

प्रातकाल सरजू करि मज्जन ।
बैठहिं सभा सग द्विज सज्जन ।।
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं ।
सुनहि राम जद्यपि सब जानहिं ।।8।।

(सामने वाले पृष्ठ पर उद्धृत पदों को मूलतः तुलसीदास विरचित रामचरित मानस की इन दोहा चौपाइयो से अनूदित किया गया है ।)

डोगरी कविता

साथी दा गीत

कोई ऐसा गीत सुना साथी, सारी दुनिया गी भुल्ली जां ।
लै छाई जा मनमौजा दी, बे-सुध-जन होइऐ झुल्ली जां ।
इक जोधे दी कोई बार होऐ, जिसी जित्त होऐ कदें हार होऐ ।
कुतै नेजें बाले घिरेआ दा, तलवारे दे बशकार होऐ ।
कुतै बनी बलूना घूंकी जा, कुतै फिलगरै आगू सूंकी जा ।
औखें दा भरेआ जीन होऐ, मन, देसै, जाती दी ईन होऐ ।
तुर्त-फुर्त पैंछी आंगू, बैरी कतरै कैंची बागू ।
लड़दे-भिड़दे गै अमर होऐ, मरिऐ बी नि उसी सबर होऐ ।
देसै दा मान बधाई जा, जग पिच्छूं बारां गाई जा ।
सुनी मन सागर ठाठां मारै, इस हुब्बा गै हुब्ब तरै सारै ।
अऊं उच्छलां लैहुर बनी-बनिऐ, बधी-बधिऐ कढे खुल्ली जां
कोई ऐसा गीत सुना साथी......
जां इस चाल्ली दा गीत होऐ, जिस बिच नोखा संगीत होऐ ।
इक ओपरी दुनिया बस्सी जा, लैहुरां मारै दी प्रीत होऐ ।
होऐ शौ-जोआनी ब्हारा दी, बिच सूंक नदी जा धारा दी ।
बिच भौरें दी गुजार होऐ, कन्नै सन-सन हंस होआरा दी ।
बिच पक्खरुऐं दी चैहुक होऐ, फुल्ले दी मिट्ठी मैहुक होऐ ।
कुसै नाड्डुऐ कंढे लेटे दे, सारे अरमान समेटे दे ।
नि'म्मी रिमझिम होऐ तारें दी, मिट्ठी-नेही फोहारें दी ।
इक मन-भांदी-नेही गूंज होऐ, मन उड्डरै आक्खो कूंज होऐ ।
नेकी जा बदी दा थोहु नि होऐ, होनी अनहोनी दा भो नि होऐ।
अऊं धरती-अम्बर चक्कर लां, कदें गास फिरा कदें उ'ल्ली जां ।
कोई ऐसा गीत सुना साथी......
जां कोयल कूका दा बैहुम होऐ, कुसै मारु हिरखै दा सैहुम होऐ।
मन थुड़ै बिरहै दी पीड़ा नै, बे-बसी होऐ, किश रैहुम होऐ ।

साथी का गीत

हिंदी भावानुवाद

सारी दुनिया बिसराऊ, ऐसा गीत सुनाना साथी ।
मन-मौज का जहाँ पसारा हो, बेसुधी का वारा-पारा हो ।
योद्धा की हो वीर-गाथ, हार-जीत का रहे साथ ।
घिरा हो चाहे भालो से, नाचे खड्ग के तालों पे ।
विषम विषधर फूत्कारे, बगूले-सा शत्रु संहारे ।
कठिनाइयों भरा जीवन हो, देश प्रेम में डूबा मन हो ।
चंचलता का पाखी हो, शत्रु के लिए फॉसी हो ।
रणभूमि में खेत रहे, स्मृति सदा सचेत रहे ।
मर कर न धीरज धरे, बार-बार जिए और मरे ।
बलिदान सागर की लहर बने, प्रीति घन गहरे घने ।
उछलूं उत्ताल तरग बना, लौटूं किनारे से टकरा ।
सारी दुनिया बिसराऊं.....
ऐसा फिर कोई गीत रहे, जिसमें अनोखा सगीत भरे ।
स्वर्ण-प्रेम की बस्ती मे, लहर जैसी रीत रहे ।
बसंत भरी जवानी मे नदी-पर्वत जैसी रीत रहे ।
भंवरो का गुजन छाया हो, हंसावलि की माया हो ।
पछियो की चहक रहे, फूलो की मृदु महक रहे ।
झरने के तट पर लेटे हुए, अरमानों को समेटे हुए ।
मद्धिम रिमझिम तारो की, शीतल कण फुहार चले ।
भले-बुरे का थाह न हो, होनी-अनहोनी का राह न हो ।
अंबर मे गहरे पैठू, धरती की कोई चाह न हो ।
सारी दुनियां बिसराऊं....
कोयल कुहक का भास रहे, मारू प्रेम का आभास रहे ।
मन घुटे विरह की पीड़ा मे, बेबसी की दीक्षा पास रहे ।

कोई कत फिरै कुतै परदेसें, कोई घर डीकै खु'ल्ले केसे ।
औसी पर औंसी पादी जा, ओ पूरी जा, इक रौंहृदी जा ।
चकरी दी चन्नै हाब होऐ, चन्न ल'ब्बै नि किश लाभ होऐ ।
ओ रहानी मुड़ी-मुड़ी डोआर भरै, टेरी पर टेरी पार करै ।
लाटा दवालै अनगिन चक्कर, कुतै उच्चे थाहुरे ला पक्खर ।
उसी सेक नि स्हारै ढलकी जा, जे छ्होऐ ता लांबा सलगी जा ।
सिदके गी दिक्खी-दिक्खी मे दुख भुल्ली जां मन झुल्ली जां ।
बस होश र'वै नी जीने दी, ना खाने दी ना पीने दी ।
कोई लक्ख कोआलै, लक्ख आखै कुसै लाहुमे तान्ने-मीहुने दी ।
कोई दोखी दुबधा जागै नि, कोई अपना पराया थागै दी ।
कोई तां'ग-कसाला डंगै नेई, मेरे दवालेआ लघै निं ।
में दूर खुदी शा मती दूर, हिरखै-प्रीतै बिच चूर-चूर ।
अपनी भरपूर खमारी च, लम्मी अनसंभी तारी च ।
कुसै डूगे सागर डुब्बी जां, कुसै सिरै-पराडै खु'ब्बी जा ।
जुग बीती जा कोई बोलै नि, मेरी लग्गी दी ताडी खोलै नि ।
मे बिप्फरेआ दा मस्ती च कुतै छलकी जा कुतै डु'ल्ली जां ।
कोई गीत सुना साथी सारी दुनिया गी भुल्ली जा ।
लै छाई जा मन-मौजा दी, बेसुध-जन होइऐ, झुल्ली जां ।

केश बिखराए कोई विरहिणी, परदेसी की प्रतीक्षित आस रहे ।
रेखाओं मे उलझी बैठी हो, औसी[1] के खेल मे हास रहे ।
चाँद-चकोरी के रिश्ते मे, विरह से उर सतप्त रहे ।
प्रेम दिवानी विरह अग्नि की ज्वाला भीषण संत्रस्त रहे ।
अग्निशिखा के अनगिन प्रेमी परवानो को मात करे ।
ताप ज्वाला सह न सके, पल में आत्मसात् करे ।
मन झूमे उसकी प्रीति पर, प्रेम की अद्भुत रीति पर ।
सारी दुनिया बिसराऊ.........
होश रहे न जीने की, न खाने की न पीने की ।
लाख बुलाए न बोलूं कुछ कहुं ज़ख्मो को सीने की ।
मन मे दुविधा, खेद न हो, अपने-पराए का भेद न हो ।
इच्छा-अभाव सताए नही, मेरे पास कोई आए नही ।
निजता से मै बहुत दूर, प्रीति मे रहूँ चूर-चूर ।
अपनी भरपूर खुमारी मे, बैठा रहूँ यादो की अटारी मे ।
डूबूं उतराऊ किसी गहरे सागर मे, तन्हाई की चादर में ।
जुग बीते कोई बोले न, मेरी अटल समाधि खोले न ।
मद-मस्ती मे मै खोया रहूँ, कही भर जाऊं, कहीं छलकू भी ।
सारी दुनिया बिसराऊ, ऐसा गीत सुनाना साथी ।
मन-मौज का जहॉ पसारा हो, बे-सुधी का वारा-पारा हो ।

---

1. बिछुड़े प्रियतम से मिलन होगा कि नही अथवा मनोवाछित वस्तु की प्राप्ति होगी या नहीं—इन बातो का पूर्वानुमान लगाने के लिए लोक-मन बहुत-सी लबाकार रेखाए खीचता है । फिर इन रेखाओ मे प्रथम से आरंभ करके एक-एक को छोड़कर प्रत्येक रेखा के नीचे तिरछी रेखा डाली जाती है । ऐसा करते हुए यदि अत मे एक रेखा तिरछी होने से बच जाए तो माना जाता है कि मनोकामना पूर्ण होगी । रेखाओ से अनागत विषयक पूर्वानुमान लगाने की इस विधि को "औसियाँ डालना" कहते हैं ।

परिशिष्ट-2

सहायक ग्रंथ सूची

डोगरी

रामायण	शंभुनाथ शर्मा
आजादी बाद दी डोगरी कविता	सपादक—वेदपाल "दीप"
डोगरी कवि शंभुनाथ शर्मा	सपादक—देवरत्न शास्त्री

हिंदी

रामचरित मानस	तुलसीदास
रामायण	बाल्मीकि

अंग्रेज़ी

जम्मू राज	डा. सुखदेव सिंह चाड़क
कल्चरल हेरिटेज ऑफ डोगराज़	ज्योतीश्वर पथिक